A-1

काली घटा

८१३.२
मुल/का

125
न.पै.

काली घटा

डा० धीरेन्द्र वर्मा पुस्तक-संग्रह

गुलशन नन्दा

अशोक पॉकेट बुक्स दिल्ली

प्रथम संस्करण : अक्तूबर, १९५९

मूल्य
एक सौ पच्चीस नये पैसे

प्रकाशक
अशोक पॉकेट बुक्स
४/३९ रूपनगर, दिल्ली।
मुद्रक : नूतन प्रेस, दिल्ली।

KALI GHATA • GULSHAN NANDA 125 nP.

१

ड्योढ़ी के फाटक पर जैसे ही घोड़े के टापों की ध्वनि सुनाई दी, माधुरी ने खिड़की खोलकर नीचे झाँका। उसके पति आज शीघ्र लौट आये थे। वह झट कमरे के बिखरे सामान को ढंग से सजाकर उसके स्वागत के लिये नीचे आ गई।

सूर्यास्त हो चुका था और अँधेरा धीरे-धीरे फैल रहा था। माधुरी ने अपनी दासी गंगा को लैम्प जलाने को कहा और स्वयं नीचे आँगन में आ खड़ी हुई। वासुदेव ने अपने कंधे से बन्दूक उतारकर नौकर के हाथ में दी और सामने खड़ी माधुरी को देखकर मुस्कराने लगा। दोनों एक दूसरे का हाथ थामे ऊपर आ गये।

बाहर अभी पूर्ण अँधेरा न छाया था। कमरे में लैम्प जलते देखकर वासुदेव ने पूछा, "अभी से उजाला कर दिया ?"

"हूँ···आप जो शीघ्र आ गये आज,"—माधुरी ने मुस्कराते हुए चंचलता से उत्तर दिया।

"और यदि मैं दोपहर को ही लौट आता तो ?"

"आप नहीं होते तो घर में अँधेरा-अँधेरा सा लगता है, अकेले में खाने को दौड़ता है।"

"अकेले क्यों ?···गंगा है, और नौकर-चाकर हैं···और सबसे बढ़-

कर प्रकृति का साथ !"

"सब हैं···किन्तु आपके बिना···,"—माधुरी ने पति की बात बीच ही में काट दी और उसका बड़ा कोट उतरवाने लगी।

वासुदेव कोट उतारकर पलंग पर लेट गया। माधुरी उसके पास जा बैठी और उसके बिखरे हुए बालों को उँगलियों से सँवारते बोली—

"आज दिन कैसा रहा ?"

"बहुत बुरा···एक चिड़िया भी हाथ नहीं लगी।"

"चलो अच्छा हुआ···पाप सिर न चढ़ा।"

"पाप ! पाप-पुण्य की सीमायें इतनी छोटी···ऐसे तो नहीं चलता जीवन में।"

"तो कैसे चलता है ?" माधुरी ने वासुदेव के गले में बाँहें डालते हुए चंचलता से पूछा। वासुदेव ने मौन किन्तु, अर्थपूर्ण दृष्टि से उसकी उन्मादित आँखों में झाँका और उसकी बाँहें हटाकर पलंग से उठ बैठा। माधुरी ने फिर धीरे से उसका हाथ पकड़ लिया और विनम्र बोली, "क्या हुआ ?"

"कुछ नहीं···स्नान का प्रबन्ध करो···पानी रखवा दो।"

माधुरी ने उसका हाथ छोड़ दिया और मूर्ति सी बनी मौन उसे देखने लगी। वासुदेव मुस्कराते हुए कपड़े बदलने भीतर कमरे में चला गया।

उसके चले जाने पर भी कुछ क्षण तो वह वहीं खड़ी एकटक शून्य में देखती रही और फिर सहसा गंगा को स्नान का पानी रखने के लिये पुकारकर स्वयं उसके कपड़े तैयार करने लगी। न जाने क्यों वह कभी-कभार अपने प्रति उसकी यह उपेक्षा देखकर काँप सी जाती।

उनके ब्याह को लगभग तीन वर्ष हो चुके थे और वह अभी तक भली प्रकार उसके मन की थाह न पा सकी थी। घर में और कोई भी न था जिससे वह दो घड़ी मन की बात कह लेती, दिन-रात मन को दबाये

पड़ी रहती थी···उसमें किस बात का अभाव था ? वह युवती थी, सुन्दर थी, शिक्षित थी···कुलीन परिवार से आई थी और उसके पिता के यहाँ··· धन की कमी भी न थी···शिष्ट समाज के सब नियमों से वह भली भाँति परिचित थी···फिर क्या था जो उन्हें उससे यूँ खिचा-खिचा रखता ? यह प्रश्न उसके मस्तिष्क में कोलाहल मचा देते, किन्तु कोई उपाय···? वह सोच-सोचकर थक जाती और उसे कुछ न सूझता, कुछ समझ में न आता।

अपने पति का मन लुभाने के लिये वह नये-नये ढंग सोचती, किन्तु सब व्यर्थ। उनके मध्य खाई बढ़ती ही जाती। उसने उसे पाटने के लाख प्रयत्न किये पर सब व्यर्थ। यह उसके बस की बात न थी, और अब तो विवश होकर उसने प्रयत्न करना भी छोड़ दिया था। वह उस तिनके के समान थी, जो नदी की तरंगों के आश्रय पर हो—इधर लहर उठी तो इधर, उधर तरंग उठी तो उधर। यह भी विचित्र जीवन था—न प्रेम था न घृणा—न हर्ष था, न विषाद। हल्की सी लगन भी थी और खिचाव भी—इनके साथ-साथ निरन्तर एक पीड़ा भी थी, मानो कोई सपने में पत्थर से सिर फोड़ ले और उस चोट में तनिक सुख अनुभव करे।

स्नानघर की चिटखनी खुलने का शब्द हुआ। वह चौंककर सँभली और मेज पर रखी चाय की ट्रे को देखने लगी, जो न जाने गंगा कब वहाँ रख गई थी। वासुदेव के पाँव की आहट हुई और माधुरी ट्रे पर झुककर चाय बनाने लगी। वह मौन और मलिन थी। वासुदेव ने कनखियों से उसे देखा और मुस्कराते हुए सामने आ बैठा। माधुरी ने चाय का प्याला बढ़ाया।

"यह माथे पर बल क्यों डाल रखे हैं ?" वासुदेव ने प्याला थामते हुए नम्रतापूर्वक पूछा।

"आपको क्या ?" उसने असावधानी से गर्दन झटकाते हुए उत्तर दिया और अपने लिये चाय का प्याला बनाने लगी।

"हमें नहीं तो और किसे ?"

"मैं क्या जानूँ ! आप तो शिकार करना जानते हैं केवल···घायल की गत को क्या जानें !"

"मधु !"

"हूँ !"

"किसी को घायल करने में मुझे क्या चैन मिल सकता है ?"

"मैं क्या जानूँ ?"

"तो सुन लो ! जितनी पीड़ा उसकी तड़प में होती है उससे अधिक पीड़ा स्वयं मुझे व्याकुल कर जाती है ।"

"तो फिर छोड़ दीजिये शिकार खेलना ।"

"नहीं···यह मेरे बस की बात नहीं ।"

वासुदेव चाय पीकर चुप हो गया । माधुरी ने अधिक वाद-विवाद उचित न समझा और चुपचाप बैठी चाय पीती रही ।

वासुदेव चाय पीकर अपने कमरे में चला गया । वह कुछ देर बैठी सोचती रही और फिर कपड़े बदलने लगी । वह सोचने लगी···यह तो उनकी प्रकृति है···उसे इतना गम्भीर न होना चाहिये था···व्यर्थ वह बुरा मान जायेंगे···उसने अपने अन्तर को टटोला···अपने पति से उसे उत्तम प्रेम था ।

सहसा मन में किसी तरंग ने अँगड़ाई ली और वह वासुदेव के कमरे में पहुँची । वह खड़ा अल्मारी में से कोई पुस्तक टटोल रहा था । माधुरी दबे पाँव उसके पीछे जा खड़ी हुई और जब बड़ी देर तक उसने मुड़कर न देखा तो माधुरी ने रुमाल की नोक बनाई और उसके कान को छुआ । वह एकाएक कँपकँपा गया और कान को झटककर पीछे मुड़कर माधुरी को देखने लगा । माधुरी अनायास हँसने लगी ।

इस समय वह कुछ विशेष सुन्दर दिखाई दे रही थी । हल्के गुलाबी रंग की रेशमी साड़ी···सँवरे हुए केश···निखरा हुआ आभामय मुख···

वासुदेव को वह दिन याद आ गया जब वह पहले-पहल दुल्हिन बन के उसके घर आई थी···तब भी वह इतनी ही प्यारी थी। उसने मुस्कराते हुए सिर से पाँव तक निहारा और हाथ में पकड़ी पुस्तक बंद करके अलमारी में रखने लगा।

माधुरी ने हाथ में पकड़ा हुआ गुलाब का फूल उसकी ओर बढ़ाया और उसे जूड़े में लगाने का संकेत किया। वासुदेव ने फूल टाँकने को उसके कंधे पर हाथ रखा और दूसरे हाथसे उस का मुँह पलटा। फिर उसके जूड़े में फूल लगा दिया। माधुरी ने मुस्कराकर अपना मुँह उसके वक्ष पर रख दिया और बोली—

"चलियेगा···?"

"कहाँ?"

"झील के किनारे···तनिक घूमने को।"

"अब तो अँधेरा हो रहा है।"

"तो क्या हुआ, आकाश पर चाँद भी तो है···"

वासुदेव निरुत्तर हो गया। दोनों छिटकी हुई दूधिया चाँदनी में, झील के किनारे टहल रहे थे। झील का स्थिर जल चाँदनी में शीशे की चादर प्रतीत हो रहा था। उनके जीवन के कितने दिन और कितनी रातें इस झील के साथ सम्बन्धित थीं, किन्तु उसे ऐसा प्रतीत होता था मानों वह समय स्वप्न में ही व्यतीत हो गया हो। वह आज भी वैसी ही अतृप्त थी, जैसी वह प्रथम दिन थी। उसके मन में आज भी आकांक्षाओं की ज्वाला धधक रही थी और वह निरन्तर अपनी भावनाओं का गला घोंट रही थी।

"यह झील···यह छोटा सा मकान···यह हरा-भरा गाँव···नगर की हलचल से दूर एक एकान्त स्वर्ग का कोना···यह सब कुछ होते हुए भी वह एक नरक की अग्नि में जल रही है। मन की बात मुँह तक नहीं ला सकती। उसने अपना सर्वस्व पति पर न्योछावर कर दिया, और एक

वह है कि उसकी भावनाओं से अनभिज्ञ, प्रेम से परे, जाने किस संसार में विचरता है, क्यों···क्यों ?"

चलते-चलते वह रुक गये और हरी-हरी दूब पर कुछ देर के लिये बैठ गये। यूँ तो वे पति-पत्नी थे, किन्तु अपरिचित से। दोनों एक दूसरे से कुछ कहना चाहते पर कह न पाते। बैठे रहे, बैठे रहे और जब बहुत देर तक माधुरी के मुख से कोई शब्द न निकला तो वासुदेव ने मौन तोड़ा—

"आज इतनी चुप क्यों हो ?"

"मेरा बोलना आप को अच्छा जो नहीं लगता···"

"ऐसी बात तो नहीं। जो मन में हो उसे कह देना ही भला।"

"तो एक बात पूछूँ ?"

"पूछो।"

"हमारे ब्याह को कितना समय हो गया ?"

"लगभग तीन वर्ष।"

"किन्तु, मुझे तो यूँ लगता है, मानो मैं ब्याही ही नहीं गई।"

"माधुरी···!" वासुदेव जैसे भाँप गया हो कि वह किस आशय से कह रही है।

"जी···!"

"कहा न मैंने, प्रेम एक ऐसी भावना है, जिस में अतृप्ति का होना, उसकी दीर्घ आयु का प्रतीक है।"

"किन्तु, दुनिया वालों का मुँह कैसे बंद किया जा सकता है ?'

"क्या कहते हैं वह ?"

"यह कि तुम्हारे पति तुमसे प्रेम नहीं करते।"

वासुदेव बेचैन होकर उठ बैठा।

"लोग यह भी कहते हैं कि तुम निःसन्तान ही रहोगी,"—माधुरी ने अपनी बात चालू रखी।

वासुदेव ने तीखी दृष्टि से उसे देखा।

"एक ने तो यहाँ तक कह दिया...,"—माधुरी ने कुछ रुककर कहा। इतना कहते-कहते उसकी आवाज कुछ रुँध गई।

"क्या...?" माथे पर से पसीना पोंछते हुए वासुदेव ने पूछा।

"कहीं ऐसा तो नहीं कि तुम्हारे पति...,"—कहते-कहते उसके होंट थरथराने लगे मानो वह अपने पति का कोई भयानक रहस्य प्रगट करने वाली हो। वासुदेव चौकस होकर उसकी आवाज की कम्पन का भान करने लगा। माधुरी ने रुकते-रुकते बात पूरी की, "तुम्हारे पति किसी और से प्यार करते हों।"

माधुरी ने वाक्य पूरा किया और वासुदेव के प्राण लौट आये। घबराहट दूर हुई। सिर को हाथ से दबाते हुए आँखें नीचे किये बोला, "तुम क्या सोचती हो?"

"कभी-कभी इसे सच समझने लगती हूँ।"

"कैसे?"

"नदी किनारे लाकर आपने अतृप्त मारना चाहा।

"ओह!" वासुदेव ने आँखें ऊपर उठाईं।

"वरना यह उपेक्षा...यह मौन...सुना है आपने यह विवाह भी घर वालों के विवश करने पर किया।"

"यह तुमसे किसने कहा?" वासुदेव ने आश्चर्य प्रगट करते हुए पूछा।

"आपकी बड़ी बहन ने...कहती थीं कि कदाचित् यही कारण मुझसे आपके रूखे व्यवहार का है।"

"माधुरी! कुछ ऐसी विवशताएँ भी होती हैं, जिन्हें जबान तक नहीं लाया जा सकता।"

"वह कौन सी ऐसी बात है जो कि आप मुझ से नहीं कह सकते?"

"समय आने पर कह दूँगा,"—वह यह कहकर उठा और झील के

किनारे टहलने लगा। माधुरी भी उसके साथ-साथ पाँव से पाँव मिलाकर बढ़ने लगी। वह सोचने लगी— उसके पति का मन भी इस झील के समान गहरा है कि यत्न करने पर भी वह उसकी थाह नहीं पा सकती।

वासुदेव अपने में खोया धीरे-धीरे बढ़ता रहा। उसे पता भी न चला कि माधुरी कब पीछे रह गई और वापस लौट गई। माधुरी की बातों ने आज उसे असाधारण बेचैन कर दिया था।

एकाएक उसे कुछ विचार आया और वह रुक गया। उसने मुड़कर देखा माधुरी वहाँ न थी। फैली हुई चाँदनी में दूर तक उसने दृष्टि दौड़ाई पर वह कहीं न थी। न जाने कब वह उससे अलग होकर लौट गई।

जब वह लौटा तो माधुरी अपने शयन-गृह में पलंग पर औंधी लेटी सिसकियाँ ले-लेकर रो रही थी। वासुदेव ने उसे देखा और असावधानी से अपना कोट उतारते हुए गंगा को पुकारा। माधुरी उसका स्वर सुनकर और सिमटकर गठरी सी बन गई। उसके रोने का धीमा स्वर निरन्तर सुनाई पड़ रहा था। गंगा भीतर आई, तो वासुदेव ने उसे खाना लगाने को कहा। गंगा लौट गई, और वह माधुरी के समीप आ ठहरा। वह रो रही थी। वासुदेव दुविधा में पड़ गया, उसे कैसे और क्योंकर चुप कराये ? फिर धीरे-धीरे अपने हाथों से उसकी पीठ सहलाने लगा और बोला, "माधुरी ! उठो, और खाना खा लो।"

माधुरी मौन रही और औंधी लेटी रोती रही। वासुदेव ने फिर उसे उठने को कहा, परन्तु उसे कोई उत्तर न मिला। इतने में गंगा के आने की आहट हुई, बोली, "सरकार ! उठिये, खाना लगा दिया है।"

"रहने दो गंगा ! मुझे भूख नहीं है,"—कुछ क्षण रुककर वासुदेव ने कहा और उठकर दूसरे कमरे में चला गया।

माधुरी ने वासुदेव को यह कहते सुना। फिर उसके पाँव की आहट भी सुनी, जो कि उसके कमरे को छोड़ जाने की सूचना दे रही थी। उसने सिर उठाया और अपने पति को जाते देखा। वह उसे रोकना

चाहती थी पर अब तीर छूट चुका था। जैसे ही उसने दूसरे कमरे के किवाड़ बन्द होने का शब्द सुना, वह फिर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी।

गंगा ने उसे यूँ निढाल होते देखा तो उसके निकट आ गई। धीरे से वह माधुरी को उठाने का प्रयत्न करने लगी। माधुरी बहुत पीड़ित थी। गंगा का सहारा मिलते ही, उसकी गोद में सिर रखकर फूट-फूट-कर रोने लगी और अशान्त मन का सारा गुबार यूँ धोने लगी।

२

"गंगा !"

"हाँ, बीबीजी !"

"साहब ने अभी तक नाश्ता नहीं किया क्या ?"

"नहीं ! वह तो प्रातः ही चले गये ।"

"कहाँ···?" माधुरी चकित हो बोली।

"झील के उस पार—कहते थे आज उनका कोई मित्र आ रहा है। वह उसे लेने गए हैं ।"

"कल तो उन्होंने इसका कोई संकेत तक भी नहीं किया ।"

"कदाचित् भूल गये हों·····,"—और गंगा कमरे की झाड़-पोंछ में व्यस्त हो गई। माधुरी चुपचाप किसी सोच में डूब गई। वह गुमसुम सी खिड़की का किवाड़ खोलकर बैठ गई। सामने ही झील का विस्तृत जल फैला हुआ था। उसकी दृष्टि उसको पार करती उसके दूसरी ओर जा पहुँची, जहाँ छोटा सा रेलवे स्टेशन था। उस गाँव में प्रत्येक आने वाले को वहीं उतरना पड़ता था। आज उसके पति अपने मित्र को उसी स्टेशन पर लेने गये थे। वहाँ से इस गाँव में आने का एक ही मार्ग था—वह नाव द्वारा।

वह कल पति से बिगड़ गई। अब वह पछताने लगी, 'शायद इसी कारण वह उस अतिथि के विषय में कुछ कह नहीं सके और प्रातः ही

चले गये ।' माधुरी ने झील के ऊपर उड़ते पक्षियों को देखा। उसकी धमनियों में फिर से लहू दौड़ने लगा और उसने अपनी थकी हुई बोझल आँखों में नवजीवन सा अनुभव किया। वह तुरन्त उठी और गंगा को पुकारा, "गंगा ! तुम शीघ्र सफाई कर डालो, मैं नाश्ता बनाती हूँ।"

यह कहकर वह रसोईघर में चली गई। आज वह स्वयं अपने हाथों अपने पति और आने वाले अतिथि के लिए नाश्ता बनायेगी। उसे विश्वास था कि जब उसके पति अतिथि के साथ घर पहुँचेंगे, तो वह रात की सब बात भूल जायेंगे और उसका परिचय कराते समय यूँ कहेंगे—

'यह है माधुरी, मेरा जीवन, जिसके आश्रय पर मैं इस उजाड़ में भी स्वर्ग का आनन्द ले रहा हूँ।' वह कल्पना में ऐसे कई चित्र बनाती रही। थोड़े-थोड़े समय पश्चात् वह उठकर झील की ओर देखने लगती और उन्हें आता न देखकर निराश सी हो जाती। किसी भय से उसका मन धड़कने भी लग जाता, किन्तु उस भय को वह समझ न पाती। एकाएक गंगा भागती हुई आई और बोली—"वह आ गये···आ गये···"

"किधर !"

"नाव पर···"

वह भागकर बरामदे में आ गई और झील को देखने लगी। दूर एक नाव उसी ओर बढ़ी चली आ रही थी। दूरी के कारण वह पहचान तो नहीं पाई, किन्तु उसको विश्वास था, उसके पति ही हैं और अकेले नहीं, संग में कोई और भी था।

गंगा को रसोईघर में खड़ा करके वह झट अपने कमरे में गई और उसने फिर खिड़की से झाँककर देखा, वह नाव निरन्तर बढ़ी चली आ रही थी। भय और प्रसन्नता—दोनों भावनायें उसके मन पर अधिकार किये थीं। उसका हृदय धक-धक करने लगा। दर्पण में उसने अपनी छवि देखी—बिखरे बाल···उलझी सूरत—वह स्वयं अपने पर झुँझला उठी। उसने शीघ्र कंघी की, बाल सँवारे और अलमारी से हल्के गुलाबी रंग की

साड़ी निकालकर पहनी। एक हाथ में उसी रंग की चूड़ियाँ और जूड़े में गुलाबी रंग का रेशमी रूमाल बाँधकर—बन-सँवरकर तैयार हो गई। यह सब उसने पलक झपकने की सी देर में कर डाला। वह किसी अतिथि पर यह प्रगट न होने देना चाहती थी कि उनके मध्य कोई खिंचाव रहता है अथवा उनका दाम्पत्य-जीवन किसी विषाद की कड़ी से सदा जकड़ा रहता है। उसने किवाड़ की ओट से नीचे झाँका। नाव झील के किनारे लग चुकी थी और वे नीचे उतर चुके थे। चौकीदार नाव में से सामान उतार रहा था। उसके मन की धड़कन तीव्र हो गई।

उसने आगन्तुक को देखने का प्रयत्न किया, किन्तु उसे देख न पाई। ज्यों ही उसके पति ने अपना घर दिखाने के लिए खिड़की की ओर संकेत किया, वह वहाँ से हटकर दीवार से लग गई और अधीरता से उनके आने की प्रतीक्षा करने लगी।

नीचे कुछ शोर हुआ···नौकरों की भाग-दौड़ हुई और गंगा भागी-भागी भीतर आई। उसने स्वामी के आने की सूचना दे दी। माधुरी के कान तब से उधर ही लगे थे। वह आने वालों की पद-चाप सुनने लगी। गोल कमरे के बाहर से स्वर सुन पड़ा, "गंगा! माधुरी कहाँ है?" वह चौंककर सँभली। वह साथ वाले कमरे में पहुँच चुके थे। वह कुछ निर्णय भी न कर पाई थी—वहीं रहे अथवा स्वागत को बाहर जाये कि वासुदेव पर्दा उठाकर भीतर आया। माधुरी को क्षण भर देखता ही रह गया। वह प्रातः ही इन गुलाबी कपड़ों में बड़ी भली और प्यारी लग रही थी। वह मुस्करा उठा और हाथ में पकड़ा फूल उसकी ओर फेंका। माधुरी ने संकोच से दृष्टि झुका ली। वासुदेव ने अपना कोट उसको थमाते हुए कहा—

"बाहर कोई अतिथि आया है।"

"आपने कल तो नहीं बताया?"

"तुमने इसका अवसर ही कब दिया?"

वह मौन रही, और उसका कोट खूँटी पर टाँगने लगी। वासुदेव बोला, "उसके लिए किसी कष्ट की आवश्यकता नहीं···घर का ही व्यक्ति है ···हाँ, लम्बी यात्रा से आया है, गंगा से कहो उसके नहाने का प्रबन्ध कर दे···वह मेरे ही कमरे में ठहरेगा,"—यह कह कर वह कपड़े बदलने लगा। माधुरी अतिथि के खाने और आराम का प्रबन्ध करने के लिए बाहर चली गई।

अभी उसने गोल कमरे में पाँव रखा ही था कि आने वाले व्यक्ति को देखकर रुक गई। वह उसकी ओर पीठ किये खिड़की से बाहर झील का दृश्य देख रहा था। सिग्रेट के धुएँ से कमरे में तम्बाकू की बास भर गई थी। माधुरी दबे पाँव बाहर जाने के लिए बढ़ी। अतिथि ने उसके पाँव की चाप सुनली, किन्तु मुड़कर नहीं देखा और सिग्रेट का धुआँ छोड़ते हुए बोला, "वासुदेव! यह गाँव नहीं स्वर्ग है। यदि मैं पहले जानता कि यह स्थान इतना सुन्दर है तो कभी का तुम्हारे पास आ गया होता।"

माधुरी ने सोचा कि वह कोई उत्तर दे दे, किन्तु उसके होंट न हिल सके। अतिथि उसे ही वासुदेव समझ रहा था। जब कुछ देर तक उसने कोई उत्तर न दिया तो अतिथि शीघ्रता से मुड़ा। दोनों की आँखें मिलीं और उसकी उँगलियों से जलता हुआ सिग्रेट फर्श पर गिर पड़ा। माधुरी की आँखें संकोच से झुक गईं और वह झट से बाहर जाने लगी कि वासुदेव दूसरे कमरे से निकल आया। माधुरी वहीं खड़ी की खड़ी उसे देखती रही। वासुदेव ने मुस्कराते हुए उसकी ओर देखा और अतिथि से सम्बोधित हो बोला, "राजेन्द्र! यह है मेरी माधुरी···मेरा जीवन···जिसके सहारे मैं इस उजाड़ को भी स्वर्ग बनाये बैठा हूँ।"

राजेन्द्र ने धीरे से हाथ जोड़कर अभिवादन किया। माधुरी ने कम्पित होंटों से उसका उत्तर दिया और शीघ्रता से बाहर चली गई। जाते हुए उसने राजेन्द्र के यह शब्द सुने जो वह उसके पति से कह रहा था—'वासुदेव बड़े भाग्यवान हो जो इतना अच्छा जीवन-साथी मिला है।'

यह बात माधुरी ने पर्दे की ओट में खड़े होकर सुनी। जब भीतर मौन छा गया तो उसने ओट में से एक बार ध्यानपूर्वक फिर नये अतिथि को देखा···बिल्कुल वही सूरत थी···जानी पहचानी सी···उसने देखा वह भी सिग्रेट का धुआँ छोड़ता हुआ कुछ सोच रहा था···कदाचित् उसी के विषय में।

बड़ा विचित्र संयोग था···राजेन्द्र, वही राजेन्द्र उसके पति का मित्र था···कालेज में वह उसका सहपाठी था। दोनों ने इकट्ठे ही बी० ए० की परीक्षा दी थी···वह सफल हो गई और राजेन्द्र असफल रहा। दोनों को एक दूसरे से कितना प्रेम था और दोनों ने आजीवन एक दूसरे का जीवन-संगी बनने का प्रण भी किया था···किन्तु, परिस्थिति जीवन की योजनाओं को क्षणभर में बदल देती है···बड़े-बड़े निर्णय धरे के धरे रह जाते हैं।

राजेन्द्र बी० ए० में असफल होते ही सेना में भरती हो गया। युद्ध का समय था और उसे शीघ्र ही ब्रह्मा की सीमा पर भेज दिया गया। आँख से दूर हुए···प्रण भी ढीला पड़ गया···इसमें उसका क्या दोष था! जात-पात और बिरादरी के नाते घर वालों को यह सम्बन्ध अच्छा न लगा और उन्होंने माधुरी के लिए नये घरानों की खोज आरम्भ कर दी। माधुरी को भी विवश होकर माता-पिता की आज्ञा के सामने झुकना ही पड़ा।

इन्हीं दिनों उसकी भेंट वासुदेव से कराई गई। यह चुनाव उसकी बहन का था। नाते में वह माधुरी के जीजा का चचेरा भाई था और सेना में अफसर था। वासुदेव जँचता हुआ सुन्दर युवक था। उसके आचरण, स्वभाव और शिष्ट व्यवहार पर माधुरी भी मोहित हो गई और उसने स्वीकृति दे दी।

वह कल्पना में बीती हुई घटनाओं को कुरेद रही थी कि किसी की उपस्थिति से चौंक गई। उसने देखा, राजेन्द्र कमरे से बाहर निकल

कर भावपूर्ण दृष्टि से उसे देख रहा था।

माधुरी ने घबराहट में अपना आँचल खींचा और सिर को लपेटते हुए रसोईघर की ओर जाने लगी। राजेन्द्र उसके समीप आ चुका था। उसने धीरे से पूछा—

"थोड़ा गर्म पानी मिल सकेगा क्या ?"

माधुरी की आँखें ऊपर न उठ रही थीं। नीचे ही देखते हुए वह रुक-रुककर बोली, "जी···क्यों नहीं···,"—और फिर गंगा को पुकारने लगी। गंगा भागती हुई रसोईघर से आई। माधुरी ने कहा, "गंगा, आपके स्नान के लिए गर्म पानी···"

"स्नान के लिए नहीं···दाढ़ी बनाने के लिए,"—राजेन्द्र ने हाथ में पकड़ा हुआ प्याला गंगा की ओर बढ़ाते हुए कहा। गंगा ने प्याला लिया और पानी लेने के लिए चली गई।

माधुरी ने छिपी दृष्टि से देखा—वह ध्यानपूर्वक उसे सिर से पाँव तक निहार रहा था। माधुरी उसकी एक टक दृष्टि को सहन न कर सकी और घबराई हुई सी बरामदा छोड़कर परे आँगन में जा खड़ी हुई। हवा के मधुर झोंके सामने झील के तल पर अठखेलियाँ कर रहे थे। उसने ललाट पर लहराती हुई लटों को सँवारा और दूर तक फैली हुई झील को देखने लग।

"कितना सुहावना दृश्य है···!"

राजेन्द्र की आवाज ने उसे चौंका दिया। उसने मुड़कर देखा, वह बिल्कुल उसके पीछे खड़ा हुआ था। वह जितना घबरा रही थी उतना ही वह उससे बात करने के लिये व्याकुल था। माधुरी ने आँख उठाकर उसे देखा और फिर आँखें नीची करके बिना कुछ कहे जाने लगी। राजेन्द्र ने फिर पूछा—

"कहाँ चलीं आप ?"

"आपके लिये नाश्ता तैयार करने।" माधुरी ने आँखें ऊपर न उठाईं।

"इतनी शीघ्रता क्यों ? अभी तो बड़ा समय है।"

इसी समय गंगा ने आकर पानी रख देने की सूचना दी। राजेन्द्र ने 'अच्छा' कहकर सिर हिलाया और मुस्कराते हुए माधुरी की ओर देखते हुए पूछा—

"आप माधुरी हैं ना ?"

माधुरी ने कोई उत्तर न दिया और नख चबाकर अपनी घबराहट को दूर करने का यत्न करने लगी।

राजेन्द्र ने फिर पूछा, "आपने शायद पहचाना नहीं मुझे ?"

"शेव का पानी ठंडा हो रहा है,"—माधुरी ने एक ही साँस में कहा और रसोईघर की ओर लौट पड़ी। राजेन्द्र भी कमरे में चला आया।

राजेन्द्र उसे पहली दृष्टि में ही पहचान गया था, इस बात ने उसकी घबराहट बढ़ा दी थी। वह खोई-खोई सी नाश्ता बनाने लगी। यदि किसी की पुकार सुन पड़ी तो वह गंगा को भेजकर स्वयं रसोईघर में काम करती रही।

नाश्ता उसने गंगा के हाथ भीतर भिजवा दिया। वह स्वयं उनके साथ चाय में सम्मिलित न होना चाहती थी। उसे डर था कि कहीं राजेन्द्र के मुख से कोई ऐसी बात न निकल जाए जो उसके पति को किसी भ्रम में डाल दे। किन्तु उसे अपने पति की आज्ञा पर अपनी इच्छा के विरुद्ध वहाँ जाना ही पड़ा।

राजेन्द्र उसकी घबराहट को भाँप चुका था। न जाने क्यों, उसे चिन्तित देखकर उसे गुदगुदी सी हो रही थी।

बातों-बातों में वासुदेव ने उसे बताया कि राजेन्द्र और वह दोनों युद्ध में एक साथ थे, किन्तु जब जापानियों का आक्रमण हुआ तो वह उससे बिछुड़ गया और जापानियों का कैदी बना। माधुरी प्यालों में चाय उँडेल रही थी। राजेन्द्र ने उसे सहायता देने के लिये दूध बढ़ाया और बोला, "आप जानती हैं, हमारी आज की भेंट कितने समय के पश्चात्

हुई है ?"

वह मौन थी, और राजेन्द्र स्वयं ही फिर बोला, "पाँच वर्ष के पश्चात् ।"

माधुरी ने दृष्टि उठाकर देखा, दोनों मुस्करा रहे थे ।

"राजी ! इतने लम्बे समय के बाद मिले हैं फिर भी ऐसे लगता है मानो हम कभी न बिछड़े हों,"—वासुदेव ने चाय का प्याला हाथ में लेते हुए कहा ।

"यदि मन में सच्चा प्यार हो तो ऐसे ही होता है,"—राजेन्द्र ने माधुरी की ओर भावपूर्ण मुस्कान से देखते हुए वासुदेव को उत्तर दिया ।

माधुरी ने राजेन्द्र का व्यंग भाँप लिया और इसके साथ ही उसके शरीर में एक हल्का सा कम्पन उत्पन्न हुआ । चाय का प्याला उसके हाथों में थर्रा उठा । वासुदेव और राजेन्द्र दोनों उसे देखकर हँसने लगे । माधुरी को उनकी यह हँसी कटार बनकर लगी, किन्तु वह चुपचाप बैठी रही ।

वासुदेव कठिनता से हँसी को रोकते हुए बोला, "ब्याह को लगभग तीन वर्ष हो गये, किन्तु इसके शरीर में वही कम्पन है जो पहले दिन थी...जब यह यहाँ आई थी ।"

माधुरी लजा गई और जाने को उठी । राजेन्द्र ने उसी की ओर देखते हुए कहा, "यह हल्का सा कम्पन ही तो स्त्री की शोभा है...... किन्तु अब यह अधिक न रह सकेगा ।"

"क्यों ?" वासुदेव ने झट पूछा ।

माधुरी भी उसका उत्तर सुनने के लिए रुक गई ।

"यह कम्पन दूर हो जायेगा ज्यूँ ही तुम्हारे घर में दो-एक नन्हे मुन्ने खेलने लग जायेंगे ।"

वासुदेव यह बात सुनकर सन्न सा रह गया जैसे उस पर ओस पड़ गई हो । राजेन्द्र भी बात को समय के अनुकूल न जानकर चुप हो गया ।

माधुरी सिर नीचा किये रसोईघर की ओर चली गई।

जब वह रसोईघर में पहुँची तो उसके कानों में फिर दोनों की हँसी की ध्वनि गूँजी। वह पलटकर देखने लगी। दोनों हवा में ठहाके छोड़ रहे-थे।

तीन

"गंगा ! माधुरी से कहो शीघ्र आये।"

माधुरी ने वासुदेव की आवाज सुनी और गंगा के सूचना देने से पूर्व ही बाहर आँगन में आ गई। गंगा ने लपककर उसके हाथों से टिफिन और टोकरी ले ली। बाहर ड्योढ़ी पर वासुदेव और राजेन्द्र दोनों उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

आज उनका पिकनिक का प्रोग्राम था। माधुरी उनके साथ न जाना चाहती थी, किन्तु वासुदेव की आज्ञा और राजेन्द्र के आग्रह के सामने वह नहीं न कर सकी। गंगा ने सामान चौकीदार को दे दिया और घर की देख-भाल के लिये पीछे ठहर गई।

राजेन्द्र को यहाँ आये आज तीसरा दिन था। इस बीच में उसे कई बार माधुरी से अकेले मिलने का अवसर मिला और उसने हर बार उस से बातचीत करना चाही, किन्तु हर बार माधुरी कोई बहाना बनाकर टाल गई। वह यही यत्न करती कि वासुदेव की उपस्थिति में ही उससे भेंट हो...न जाने क्यों, राजेन्द्र की निकटता से उसे कुछ भय सा अनुभव होता।

आज भी उनके साथ आते हुए वह डर रही थी। वह दोनों आगे-आगे बातों में लगे चल रहे थे और यह चुपचाप उनके पीछे अपनी ही चिन्ताओं में खोई आ रही थी। जब कभी वह मुड़कर उस पर कोई प्रश्न

करते तो वह यूँ उनकी ओर देखने लगती मानो किसी ने स्वप्न भंग कर दिया हो, निन्द्रा से झँझोड़कर जगा दिया हो।

चौकीदार को उन्होंने किनारे पर ही छोड़ दिया और स्वयं नाव में बैठकर झील को पार करने लगे। तीनों मौन थे। केवल चप्पुओं की ध्वनि ही सन्नाटे को तोड़ रही थी। यूँ प्रतीत हो रहा था मानो तीन विपरीत दिशाओं के यात्री एक अनजान स्थान पर इकत्र हो गये हों और एक दूसरे से अपरिचित असमंजस में हों कि किस से क्या कहें···?

वासुदेव नाव के एक किनारे पर और राजेन्द्र दूसरे पर बैठा था। माधुरी बीच में बैठी तुल्य को समान रखने का प्रयत्न कर रही थी··· कुछ घबराई सी, कुछ लजाई सी, पसीना-पसीना, सिमटी बैठी थी। उसकी यह दशा राजेन्द्र से छिपी न रह सकी और वह कभी-कभार उसकी ओर दृष्टि घुमाकर मुस्करा देता। शीतल पवन के झोंके माधुरी की दो-एक चंचल लटों से खिलवाड़ कर रहे थे। वह बाँह उठाकर उन्हें सँवारती और जब वह बाँह नीचे करती तो वह फिर लहराने लगतीं। ऐसा करते हुए प्रायः उसकी दृष्टि राजेन्द्र की दृष्टि से टकरा जाती और वह झेंपकर गर्दन झुका लेती।

"माधुरी!"

"जी!" वह एकाएक चौंक गई और वासुदेव की ओर देखने लगी।

"यह आज असाधारण किस सोच में खोई हो?"

"मैं···नहीं तो!"

"मैं भी यही पूछने वाला था,"—राजेन्द्र ने मित्र की बात का समर्थन करते हुए माधुरी से कहा।

राजेन्द्र की बात सुनकर माधुरी घबराहट को दूर करने के लिये होंटों पर फीकी मुस्कान ले आई।

"किन्तु, तुम भी तो एक आगन्तुक के समान गुम-सुम बैठे हो,"—वासुदेव ने राजेन्द्र को सम्बोधन करके कहा।

"इन्हीं के सम्बन्ध में सोच रहा था।"

"क्या ?" वासुदेव ने झट प्रश्न किया। माधुरी के कान खड़े हो गये। राजेन्द्र क्षण भर रुककर बोला—

"यूँ जान पड़ता है···बरसों पहले इन्हें कहीं देखा है।"

"तभी तो यह यूँ घबराई सी···"

वासुदेव बात पूरी भी न कर पाया था कि माधुरी ने तीखी दृष्टि से राजेन्द्र को देखा और बोली, "आप यह पहेलियों में बातें क्यों कर रहे हैं···? स्पष्ट कह दीजिये ना कि हम कालिज में सहपाठी थे।"

उसके काँपते हुए स्वर को सुनकर राजेन्द्र अनायास हँसने लगा और फिर कठिनता से हँसी रोकते हुए वासुदेव से बोला, "देखा··· मैं न कहता था कि तुम्हारी पत्नी को मैंने पहले भी देखा है।"

"यह अच्छी रही···दो दिन से यह तुम दोनों अपरिचित से क्यों बने रहे ?"

"मैंने सोचा, यह पहचान जायेंगी।"

"और मैं सोचती रही शायद यह पहचान नहीं पाये···अब क्या स्मरण कराऊँ ?" माधुरी ने गम्भीर वातावरण में मुस्कान उत्पन्न करते हुए उत्तर दिया।

दोनों की हँसी छूट गई। वासुदेव ने मित्र की ओर देखते हुए कहा, "क्या मिलन रहा···तुम मेरे मित्र बनकर आये और माधुरी से, मुझसे पहले के ही परिचित निकले।"

"मेरा सौभाग्य है · अब दुगनी आवभगत का पात्र हूँ—एक तुम्हारी ओर से और दूसरे इनकी ओर से—क्यों भाभी ?"

'भाभी' का शब्द सुनते ही माधुरी ने गर्दन उठाई और अपने पति और पुराने सहपाठी दोनों की ओर बारी-बारी देखा। दोनों के होंटों पर मुस्कान फैली हुई थी, एक में अतीत की झलक थी और दूसरी में भविष्य की। वह फिर चुप हो गई और झील के तल पर नाव के बहाव से

बनती और मिटती लहरों को देखने लगी।

आकाश पर छोटी-छोटी तैरती बदलियाँ, झील के स्वच्छ जल पर लहरों की आँख मिचौनी, और उड़ती हुई श्वेत बगुलों की पंक्तियाँ अति सुन्दर दृश्य उत्पन्न कर रही थीं। तीनों अब आपस में खुल रहे थे। जब दोनों मित्र कोई बात छेड़ते तो माधुरी को भी सम्मिलित होना पड़ता।

एक घण्टे की नाव-यात्रा के बाद नाव पेड़ों के एक सुन्दर झुरमुट के पास रुकी। तीनों पिकनिक की सामग्री उठाकर पास ही सरकंडों से ढके एक चबूतरे पर ले आये। नीचे हरी-हरी मखमली दूब की चादर थी। ऐसे कई और चबूतरे भी यहाँ बने हुए थे जो लोगों को धूप और वर्षा से बचाते थे।

सामान रखकर झील में नहाने का कार्यक्रम बना। माधुरी को भी साथ चलने के लिए कहा गया परन्तु उसने इन्कार कर दिया। राजेन्द्र ने तुरन्त पूछा—

"आप क्यों नहीं चलतीं ?"

"मुझे तैरना नहीं आता,"—उसने धीरे से उत्तर दिया।

"वासुदेव ने तैरना भी नहीं सिखाया क्या ?"

"जो स्वयं डूब रहा हो, वह भला दूसरे को तैरना क्या सिखायेगा !" वासुदेव ने दोनों की बात काट दी। उसके गम्भीर स्वर से दोनों झेंप गये।

कुछ देर चुप रहने के पश्चात् राजेन्द्र फिर बोला—

"कुछ समझ नहीं आता।"

"क्या ?" वासुदेव ने पूछा।

"जब से यहाँ आया हूँ तुम दोनों के मध्य एक बड़ा अन्तर देख रहा हूँ।"

"राजी ! तुम नहीं जानते···अन्तर देखने वाले को लगता है, वास्तव में मन मिले होते हैं—क्यों माधुरी ?" वासुदेव ने बात का विषय बदल दिया और माधुरी का हाथ थामकर उसे अपनी ओर खींचते हुए बोला—

"तैरना सीखोगी ?"

"ऊँ हूँ !"

"नहीं भाभी ! तुम्हें हमारे साथ चलना ही होगा ।"

"मैंने कहा ना मुझे पानी में जाते डर लगता है ।"

"मैं जो तुम्हारे साथ हूँ—डूबने नहीं दूँगा ।" वासुदेव ने उसे और अपने निकट खींच लिया और दोनों हँसते हुए उसे अपने साथ घसीटकर ले गये ।

किनारे पर आकर माधुरी फिर रुक गई । किन्तु वासुदेव ने उसे पानी में खींच लिया । झील में पाँव पड़ते ही माधुरी की एक चीख निकल गई और वह डुबकियाँ खाने लगी । दोनों मित्रों ने अपने हाथ मिलाकर उसे सहारा दिया और ऊपर खींच लाये । वह घबराहट में हाथ-पाँव चलाने लगी, यह देख वह दोनों जोर से हँसने लगे । वासुदेव ने आगे गहरे पानी में जाने की इच्छा प्रकट की, पर माधुरी न मानी और वह उसे राजेन्द्र के पास छोड़कर आगे बढ़ गया । राजेन्द्र उसे कंधों का सहारा दिये धीरे-धीरे तैरना सिखाने लगा । माधुरी की साँस फूल रही थी और वह मुँह से पानी के बुलबुले छोड़ रही थी । फूली हुई साँस से उसने प्रार्थना की—

"बस कीजिये ना !"

"अभी से···? धीरज न धरोगी तो तैरना क्यूँकर सीख पाओगी ?"

"वह अकेले तैर रहे हैं ।"

"उन्हें सहारे की आवश्यकता नहीं, सहारा तो तुम्हें चाहिए ।"

कुछ क्षण चुप रहने के पश्चात् माधुरी ने पूछा, "आप ने यह क्यूँ-कर कहा कि हमारे मध्य में एक बड़ा अन्तर है ?"

"मेरा अनुमान है, और तुम जानती हो मेरा अनुमान सदा ठीक होता है ।" राजेन्द्र ने हाथ बढ़ाकर किनारे को पकड़ लिया और पानी से बाहर आया । माधुरी ने भी पानी से बाहर आने की इच्छा प्रगट की, परन्तु

राजेन्द्र न माना और माधुरी का हाथ पकड़कर उसे पानी में किनारे-किनारे तैराने का अभ्यास करवाने लगा।

"माधुरी ! एक बात बताओगी ?"

"क्या ?"

"मुझे यहाँ पहले-पहल देखकर तुम गम्भीर क्यों हो गई थीं ?"

"नहीं तो...?"

"वासुदेव से डर गईं क्या ?"

"आप तो जानते हैं कि ब्याह के पश्चात् स्त्री का क्या कर्त्तव्य और विवशता होती है।"

"तो मैं कब कर्त्तव्य को भुलाने की बात कहता हूँ ?"

"किन्तु, ऐसा करना ही पड़ता है। पुरुषों का क्या भरोसा !"

"क्यूँ ?"

"यूँ ही शंका कर बैठें।"

"मन शुद्ध होना चाहिए, किसी का साहस नहीं कि कोई उँगली भी उठा सके। अब तुम्हीं देखो कि तुम मेरे पास हो—अकेली हो और तुम्हारे पति दूर...दृष्टि से ओझल तैर रहे हैं।"

"आप क्या जानें उनके मन में कौनसा भँवर उठ रहा होगा ?"

"क्यूँ ?"

"इस शीतल जल में वह जल रहे होंगे।" माधुरी का यह कहना था कि राजेन्द्र के हाथ ढीले पड़ गये और वह डूबने लगी। राजेन्द्र ने झट से उसका हाथ थाम लिया और उसे खींचकर किनारे पर ले आया। हरी-हरी दूब पर उसका श्वेत कोमल शरीर—भीगे वस्त्रों में यूँ लग रहा था मानों संगमरमर की शिला को पानी से धो डाला हो। राजेन्द्र ने उसे देखा और दूर झील की ओर देखते बोला—

"माधुरी ! जाओ !! तुरन्त कपड़े बदल डालो, कहीं ठंड न लग जाये।"

यह कहकर वह झील में कूद पड़ा। माधुरी ने अपने शरीर को समेटते हुए उसे देखा। वह तैरता हुआ दृष्टि से दूर शायद वासुदेव के पास जा रहा था।

आकाश पर नन्हीं-नन्हीं बदलियाँ मिलकर घनी होती जा रही थीं, जिनके एक ओर से काली घटा उठ रही थी, जो कि घनघोर वृष्टि की भावी सूचना थी। माधुरी सिमटी-सिकुड़ी सी चबूतरे पर पहुँची और तौलिये से शरीर को पोंछने लगी।

जब दोनों थके-हारे तैरकर लौटे तो माधुरी कॉफ़ी तैयार कर रही थी। उसके भीगे हुए काले केश कंधों पर नागों की भाँति बल खा रहे थे और वह शरीर को ढाँपे हुए स्टोव के पास बैठी छींक रही थी।

माधुरी ने तीन प्यालों में कॉफ़ी उँडेली और सब बैठकर पीने लगे। राजेन्द्र को ऐसे लग रहा था जैसे ब्याह के बाद भी माधुरी में कोई अन्तर नहीं आया, वह आज भी पुरानी कालिज-गर्ल ही दिखाई दे रही थी, हाँ चंचलता का स्थान गम्भीरता ने ले लिया था।

जब से वह यहाँ आया था, उसके मस्तिष्क में एक ही विचार घूम रहा था, 'वह क्या बात है जिसने दोनों के मध्य एक खाई सी उत्पन्न कर दी है?...वह एक दूसरे से नवयुवक दम्पति के समान घुले-मिले क्यों नहीं?' उसने दो-एक बार बातों-बातों में माधुरी से पूछने का प्रयत्न भी किया, किन्तु वह कोई बात बनाकर टाल गई। एकाएक वर्षा आरम्भ हो गई। सरकंडों के छप्पर से वर्षा की बौछार रुक न सकी। वह अपना सामान सँभालकर सामने एक पुराने खण्डहर में घुस गये। यह खण्डहर कोई प्राचीन महल था, जो पहाड़ी को काटकर बनाया गया था।

राजेन्द्र ने खण्डहर को देखने की इच्छा प्रगट की और वासुदेव को साथ चलने का आग्रह किया। वासुदेव तैरने से काफी थक चुका था, सो वह माधुरी से बोला, "तुम चली जाओ न साथ!"

"आप भी तो चलिये न!" माधुरी ने कहा।

"तुम तो जानती हो कि मुझे यह खण्डहर अच्छे नहीं लगते।"

"क्यों?" राजेन्द्र ने पूछा।

"बहुत देख चुका हूँ। मैं यहाँ बैठकर बरखा को देखता हूँ, तुम महलों का उजड़ापन देखो।"

राजेन्द्र ने कपड़े बदले और जाने को तैयार हो गया। वह कुछ देर माधुरी की प्रतीक्षा करता रहा, पर जब वह अपने स्थान से न हिली, तो स्वयं बिना कुछ कहे, अकेला ही चल पड़ा। वासुदेव ने पहले उसे और फिर माधुरी को देखते कहा, "जाओ न! वह अकेला ही जा रहा है। क्या कहेगा?"

"मैं क्या करूँ?"

"वह हमारा अतिथि है और फिर पराया भी नहीं। जैसे वह मेरा मित्र है वैसे तुम्हारा।"

"उफ़...!" माधुरी अपना स्थान छोड़कर उठी और राजेन्द्र के पीछे चल दी। यद्यपि वह स्वयं उसके साथ जाना चाहती थी, किन्तु अपने पति पर वह अपनी उत्सुकता प्रगट न करना चाहती थी। खण्डहर के भीतरी भाग में प्रवेश करने से पूर्व, एक बार फिर उसने अपने पति को देखा और धीरे-धीरे पाँव बढ़ाती चली गई। वासुदेव वर्षा की तारों को देखने लगा।

भीतर अँधेरा था, परन्तु दीवारों के छोटे-छोटे झरोखों से कुछ प्रकाश छनकर भीतर आ रहा था। राजेन्द्र शायद बहुत आगे निकल चुका था। वह आँखें फाड़-फाड़कर इधर-उधर देखती पर वह उसे कहीं दीख न पड़ा।

एकाएक वह एक मोड़ पर रुक गई। उसे ऐसा लगा कि कोई छाया अँधेरे में उसके पास खड़ी हो। भय से उसका लहू सूख गया। वह धीरे से मुड़ी ही थी कि सिग्रेट के धुएँ ने उस छाया को छिपा लिया।

माधुरी की हल्की सी चीख निकल गई।

"डर गईं क्या?"

"ओह, आप! मैं समझी..."

"कोई भूत होगा—क्यों ?"

"आप यहाँ खड़े क्या कर रहे हैं ?"

"तुम्हारी प्रतीक्षा··· ।"

"आप ने कैसे जाना कि मैं आऊँगी ?"

"मन कह रहा था···।"

"उन्होंने बलपूर्वक भेज दिया, मैं तो न आ रही थी ।"

"झूठ···तुम्हारे शरीर को भेजा गया है, किन्तु मन तो आने को पहले ही व्याकुल था ।"

माधुरी उसकी बात सुनकर ऐसे झेंप गई, जैसे चोरी करते पकड़ ली गई हो । उसने मुँह मोड़ लिया । राजेन्द्र ने उसे, उस धुँधले प्रकाश में देखा और उसके निकट आकर धीरे से बोला—

"क्या यह झूठ है ?"

"हो सकता है···।"

"किन्तु, मुझे यह विश्वास नहीं कि तुम मुझे इतना शीघ्र भुला बैठी हो । यह कैसे सम्भव है !"

"देखिये, चलिये ! मेरी साँस घुटी जा रही है,"—माधुरी ने कहा और जाने को मुड़ी । राजेन्द्र ने उसके कंधे पर हाथ रखकर उसे जाने से रोक लिया । वह सिर से पाँव तक काँपकर रह गई । राजेन्द्र ने उसकी आँखों में आँखें डालकर अपना प्रश्न दोहराया ।

"आपको अब ऐसी बातें न करनी चाहिएँ, अब मैं किसी की पत्नी हूँ ।" माधुरी ने उससे अलग होते हुए कहा ।

"इससे मैं कब इन्कार करता हूँ ? किन्तु; तुम मुझ से इतना रूखा व्यवहार क्यों करती हो ?"

"कैसे ?"

"अपने मन की दशा छिपाकर···।"

"मन की दशा···वहाँ हो ही क्या सकता है ?"

"कोई रहस्य···कोई पीड़ा···"

"पीड़ा···!" माधुरी के मुख से एक निःश्वास सा निकला।

"हाँ, माधुरी! जब से आया हूँ तुम्हें विषादग्रस्त ही पा रहा हूँ। एक विषाद की छाया···"

"चलिए! आप को खण्डहर दिखा लाऊँ।"

"नहीं! पहले तुम्हारे मन का सूनापन देखना चाहता हूँ।"

"अभी तो आप यहाँ कुछ दिन हैं ना?"

"हाँ!"

"तो धीरे-धीरे स्वयं ही सब जान जायेंगे।"

"किन्तु, तुम कुछ न कहोगी?"

"कहूँगी, किन्तु अभी नहीं। अब चलिए।"

माधुरी ने अपना हाथ राजेन्द्र के हाथ में दे दिया। हाथ का स्पर्श होना था कि दोनों के शरीर में सिहरन दौड़ गई और वह आगे बढ़ गये।

वह खण्डहर सम्राट् बाबर के समय का था। पहाड़ी को काटकर एक ऐसा दुर्ग सा बना लिया गया था जिसमें एक विशाल सेना छिपाई जा सकती थी। दूर से यह स्थान एक पहाड़ी सी दिखाई पड़ती थी। माधुरी इस दुर्ग का सैनिक तथा ऐतिहासिक महत्त्व समझा रही थी और वह उसके मुख पर दृष्टि जमाये धीरे-धीरे उसके साथ बढ़ रहा था। राजेन्द्र कल्पना द्वारा उस समय का अनुमान लगा रहा था, जब माधुरी वासुदेव के साथ इन्हीं अँधेरी गुफाओं में प्रथम बार आई होगी। यह अँधेरा, यह एकान्त और दो नव-विवाहित युवा हृदय—इससे बढ़कर मिलन का और कौन सा स्थान है! वह अवश्य इस खण्डहर के किसी कोने में एक दूसरे के आलिङ्गन में बँधे होंगे!!

एकाएक किसी पत्थर से टकराकर राजेन्द्र की विचारधारा टूट गई। माधुरी मौन खड़ी उसे तक रही थी। उसे यूँ खोया सा देखकर बोली—

"क्या सोच रहे थे आप?"
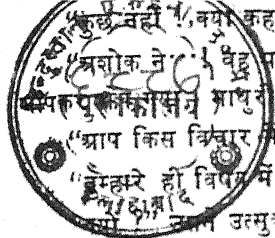
"कुछ नहीं !, क्या कहा था तुमने, यह महल सम्राट् अशोक ने..."

"अशोक ने..." वह अनायास हँस पड़ी । राजेन्द्र भी अपनी भूल को [illegible] माधुरी बोली—

"आप किस विचार में डूबे थे ?"

"तुम्हारे ही विषय में सोच रहा था ।"

"क्यों ?" उसने उत्सुकतापूर्वक पूछा ।

"सोचता हूँ, कितनी भाग्यशाली हो, जो इस स्वर्ग में जीवन व्यतीत कर रही हो ।"

"आपका क्या विचार है, इस स्वर्ग में मेरा जीवन कैसा कट रहा होगा ?"

"अति सुन्दर...यह एकान्त, यह मनमोहक दृश्य, यह सुन्दर साथ, और क्या चाहिए तुम्हें ?"

"बस, एक बात का अभाव..."

"क्या ?"

"मृत्यु !" माधुरी ने कहा और मुख मोड़कर दूसरी ओर देखने लगी । फिर धीरे-धीरे पग उठाती गुफा की उस दीवार के पास जा खड़ी हुई जिसमें से रिस-रिसकर पानी नीचे टपक रहा था । वह उँगलियों से उस गीली दीवार पर चित्र बनाने लगी । राजेन्द्र को उसके इस उत्तर पर आश्चर्य हुआ । वह उसके मन को कुरेदने का प्रयत्न कर रहा था । उसे उससे ऐसे ही उत्तर की आशा थी । उसे यह समझ न आ रहा था कि वह कौन सी ऐसी विवशता है जो दोनों के जीवन को दूभर बनाये हुए है । वह धीरे से उसके निकट जा खड़ा हुआ और उसके कंधे को उँगलियों से छूते हुए बोला, "माधुरी !"

माधुरी ने मुड़कर उसकी ओर देखा । राजेन्द्र ने देखा कि उसकी आँखों से आँसू यूँ ही टपक रहे थे, जैसे सामने की दीवार से । वह भी सदियों के घाव छिपाये मौन थी और माधुरी वर्षों की पीड़ा लिये चुप !

उसने ध्यान से दीवार पर देखा और वहाँ लिखा 'मृत्यु' का शब्द पढ़कर बोला—

"यह क्या, माधुरी ! तुम रो क्यों रही हो ?"

"कुछ नहीं,"—उसने आँचल से गालों पर आये आँसू पोंछते हुए कहा और बाहर जाने को बढ़ी। राजेन्द्र ने उसका मार्ग रोककर कहा, "मैं यूँ न जाने दूँगा।"

"चलिए ! बहुत देर हो गई , वह प्रतीक्षा में होंगे।"

"नहीं ! तुम्हारे दुख का कारण बिना जाने न जाऊँगा।"

"क्या लीजिएगा सुनकर ?"

"तुम्हारी आँखों में यह उदासी अच्छी नहीं लगती।"

"अब नहीं, फिर कभी सुन लीजिएगा।"

"इतनी प्रतीक्षा कौन करेगा !"

"वह मेरे नहीं···,"—माधुरी ने यह शब्द भर्राये हुए स्वर में मुँह फेरकर कहे।

"मैं समझा नहीं···?"

"न जाने क्यों, वह मुझसे दूर-दूर रहते हैं, जैसे घृणा करते हों।"

"क्या कभी कोई बात···?"

"नहीं ! ब्याह के दूसरे दिन ही हम यहाँ आये और तब से इसी स्थान पर हैं।"

"तुमने इसका कारण जानने का यत्न किया है !"

"कुछ समझ नहीं आता, इतना अवश्य जानती हूँ कि वह ब्याह के लिए सहमत न थे। घर वालों ने विवश करके ब्याह कर डाला।"

"ऐसा ही सही, किन्तु तुम जैसा जीवन-साथी पाकर उसके दुखी होने का कोई कारण नहीं।"

"सम्भव है कि वह किसी और को चाहते हों। मन की कुछ कहते भी तो नहीं।"

"ओह...!" वह क्षण भर चुप रहने के पश्चात् बोला—

"मैं समझा..."

"क्या...?" माधुरी ने समीप आते उत्सुकता से पूछा।

"दोष तुम्हारा ही है जो तीन वर्षों में भी उनके प्रेम को जीत न सकीं। तुम कैसी स्त्री हो?"

"आप क्या जानें, मैंने क्या-क्या यत्न नहीं किये...वह तो पत्थर हैं।"

"तब तो तुम्हें एक ऐसे साथी की आवश्यकता है जिसमें तुम दोनों का स्नेह हो।"

"कैसा साथी ?"

"कोई नवजीवन, कोई नन्हा-मुन्ना...जो तुम दोनों के प्यार का केन्द्र बन सके और तुमको एक दूसरे के निकट ला सके।"

"मेरे भाग्य में यह कहाँ ?" आँचल मुँह में ठूँसकर उसने गर्दन फेर ली।"

"क्यों... ? ऐसी क्या बात है ?"

"राजी !" उसने उखड़े हुए साँस में उसके नाम से उसे सम्बोधित किया और बोली, 'अब तुमसे क्योंकर कहूँ...वह पराये हैं, मेरा उन पर कोई अधिकार नहीं...मैं अब तक बिन ब्याही दुल्हन हूँ...सागर के किनारे खड़ी अतृप्त हूँ...केवल नाम मात्र के सुहाग का क्या अर्थ ! मैं पूछती हूँ, मैं किसलिए ब्याह कर लाई गई हूँ...तुम कह रहे हो मेरी कोख हरी हो और वह तो आज तीन बरस से प्रेम तो अलग मेरे कमरे तक में नहीं सोये...कभी तो मन चाहता है इस झील में कूदकर प्राण दे दूँ।"

यह बातें कहते हुए माधुरी ने तनिक भी संकोच प्रकट नहीं किया। न जाने किस भावना के अधीन उसने सब कुछ कह डाला और रोती हुई बाहर निकल गई। राजेन्द्र खड़ा उसे देखता ही रहा...माधुरी ने अपने दुखी, विवाहित जीवन का रहस्य उसे क्यों बता दिया ? उसे वासुदेव पर क्रोध आने लगा।

कालिज के समय में वह माधुरी से प्रेम करता था, हार्दिक प्रेम··· वह इन पाँच वर्षों में उसे बिल्कुल भुला भी न सका था···और अब अकस्मात् उनकी फिर भेंट हो गई, वह उसकी दशा देखकर तड़प गया ···हृदय में फिर प्रेम ने अँगड़ाई ली।

जब वह गुफा से बाहर निकला तो माधुरी वासुदेव के पास बैठी बातें कर रही थी। वासुदेव के मुख पर दुख झलक रहा था और वह उसके बालों से खेल रहा था। राजेन्द्र दूर से खड़ा उन्हें देखता रहा। यह विचित्र पहेली उसकी बुद्धि में न आ रही थी।

बाहर निरन्तर वर्षा हो रही थी।

४

"मालिक···मालिक···!"

घर भर एक चीख से गूँज उठा। अभी पौ फटी ही थी कि निस्तब्धता को चीरती हुई यह पुकार वासुदेव के कानों में पहुँची। वह हड़बड़ाकर बिस्तर से उठा और बाहर की ओर लपका।

गंगा चिल्लाती हुई उसी की ओर आ रही थी, "कोचवान···कोचवान को बचाइये···!"

"क्या हुआ ?"

"घोड़े ने उसे मुँह में ले लिया है।"

वासुदेव ने झट दीवार पर टँगी चाबुक उतारी और नीचे भागा। घर के शेष व्यक्ति भी जागकर बाहर निकल आये थे। माधुरी द्वार पर खड़ी गंगा से पूछ रही थी। साथ के कमरे से राजेन्द्र निकल आया और बोला, "क्या हुआ ?"

"घोड़े ने कोचवान को दबोच लिया है···वह गये हैं ··· जाइये··· देखिए···कहीं···"

बात माधुरी की जुबान पर ही थी कि राजेन्द्र नीचे भागा। माधुरी और गंगा भी उसके पीछे नीचे उतर गईं।

जब वासुदेव नीचे पहुँचा तो घोड़ा मस्त और बिफरा हुआ बिलबिला रहा था। उसके मुँह से झाग निकल रहा था और उसने कोच-

वान को पेट से पकड़कर मुँह में ले रखा था। वासुदेव ने जोर से घोड़े को ललकारा और आगे बढ़कर उस पर चाबुक बरसाने लगा। कोचवान की चिल्लाहट, घोड़े की हिनहिनाहट और तड़ातड़ चाबुक की आवाज़ से वातावरण काँप गया। घोड़े ने अब भी कोचवान को न छोड़ा। वासुदेव चाबुक लिए उसके और समीप जा पहुँचा। माधुरी और राजेन्द्र ने उसे रोकना चाहा किन्तु वह न रुका। पास पहुँचकर उसने जमीन पर रखी रस्सी उसकी गर्दन में डालकर जोर से झटका दिया और कोचवान का शरीर उसके मुँह से छूटकर धरती पर आ गिरा। घोड़ा टाँगों पर उछलकर ज़ोर से हिनहिनाया और यूँ लगा मानो अभी वह वासुदेव पर झपटा। माधुरी की डर से चीख निकल गई किन्तु घोड़े को वासुदेव ने बस में कर लिया था। वह अभी तक उस पर चाबुकें बरसा रहा था।

राजेन्द्र और गंगा ने बढ़कर कोचवान को उठा लिया। उसका शरीर लहू से लथपथ हो रहा था। घोड़े के दांत उसके पेट में धँसकर गहरा घाव कर गये थे। चौकीदार और आस-पास के दो-चार और व्यक्ति भी आ गये थे और उन्होने मिलकर घोड़े को रस्सों से बाँध दिया।

वासुदेव पसीना-पसीना हो रहा था। आज जिस क्रोध और आवेश में उसने चाबुकें चलाई थीं उसे देखकर सब घबरा गये थे। घोड़े के मुँह से अभी तक झाग बह रहा था और उसकी आँखों से पानी निकल रहा था। चाबुकों के चिह्न उसकी पीठ पर चमक रहे थे। वासुदेव ने एक कड़ी दृष्टि उस पर डाली और कोचवान की ओर देखकर चौकीदार से बोला, "इसे तुरन्त नाव में डालकर पार रेलवे डिस्पेन्सरी में ले चलो··· मैं कुछ देर में कपड़े बदलकर पहुँचता हूँ।"

"यह सब हुआ कैसे ?" राजेन्द्र ने पूछा।

"पशु जो ठहरा···क्या भरोसा ? बेचारा घास डालने को गया और यह आपत्ति सिर आ पड़ी।

"कोई नया था ?"

"नहीं, चार बरस से यही कोचवान है, किन्तु पशु का क्या, उसी को दबोच लिया जो दिन-रात सेवा करता है।"

राजेन्द्र चुप हो गया और सब ऊपर चले आए। माधुरी ने गंगा को चाय लाने को कहा और स्वयं वासुदेव के कपड़े निकालने लगी। उसके कान उन दोनों की बातों पर लगे हुए थे।

"इतने आवेश से चाबुक बरसाने पर घोड़े को बस में कर ही लिया—मुझे अब तक विश्वास नहीं आ रहा।" राजेन्द्र ने बैठते हुए वासुदेव से कहा।

"क्यों?"

"इतना कोमल, गम्भीर और शान्त स्वभाव व्यक्ति एकाएक इतना कठोर कैसे बन गया?"

स्थिति ही ऐसी थी···ऐसे में तो अनचाहे भी स्वयं रुआँ-रुआँ आवेश में आ जाता है।

गंगा चाय की ट्रे लेकर आ गई और माधुरी उनके लिये चाय बनाने लगी। इस घटना से वातावरण बड़ा गम्भीर हो गया था और सब सहमे हुए से चुपचाप थे।

चाय पीकर वासुदेव झट कोचवान को देखने के लिये डिस्पैन्सरी जाने के लिए तैयार हो गया। उसे डर था कि कहीं पागल घोड़े का विष उसके लहू में न मिल जाये। राजेन्द्र ने भी साथ चलने की इच्छा प्रगट की किन्तु, वासुदेव न उसे यह कहकर रोक दिया, "नहीं, तुम घर पर ही रहो, मैं शीघ्र लौटने का प्रयत्न करूँगा।"

वासुदेव चला गया और जब तक वह आँखों से ओझल न हो गया दोनों उसे देखते रहे। कमरे में मौन छा रहा। फिर माधुरी बोली—

"पशुओं का पागल हो जाना भी बड़ा भयानक होता है।"

"हाँ, और मानव का पागल होना इससे भी भयानक है।"

टंडी-ठंडी वायु चल रही थी। वह ड्योढ़ी से बाहर निकलकर झील

के किनारे आ पहुँचे और लहरों का नृत्य देखने लगे। अभी तक माधुरी के मस्तिष्क पर वही घटना छाई हुई थी।

राजेन्द्र चलते-चलते रुक गया और हरी दूब के एक टुकड़े पर माधुरी को बैठ जाने को कहा। वह झील के किनारे पर अपने पाँव पानी में डालकर बैठ गई। राजेन्द्र की ओर उसकी पीठ थी। दोनों अपने-अपने विचारों में खोये बैठे थे। अन्त में राजेन्द्र ने मौन भंग किया और कहा—

"माधुरी ! कहते हैं कि स्त्री, पुरुष की सब से बड़ी दुर्बलता है।"

"पुरुषों की दृष्टि में···मैं तो समझती हूँ कि इस आड़ में वह स्त्री को खिलौना बनाकर अपना मन बहलाते हैं, और जब मन भर जाता है तो उसे तोड़-फोड़कर फेंक देते हैं।" माधुरी ने बिना उसकी ओर देखे उत्तर दिया।

"किन्तु, तुम से तो कोई ऐसा बरताव नहीं हुआ ? यह खिलौना अभी तो बहुत सुन्दर है।"

"बस, एक दिन यह भी स्वयं ही टूट जायेगा।"

"माधुरी ! ऐसी बात क्यों करती हो···मन दुखी होता है।"

"क्यों ?"

"न जाने यह सहानुभूति क्यों !"

"आप बनाने लगे क्या ?"

"क्या तुम ऐसा समझती हो···मुझे तुमसे यह आशा न थी।"

"और आप मुझे भुला देंगे···मुझे भी आपसे यह आशा न थी।"

"ब्याह हो जाने के पश्चात् स्त्री पराई हो जाती है और उससे प्यार किया जाना पाप होता है।"

"आप तो पाप करने से पूर्व ही प्रायश्चित करने लगे।"

"क्यों ?"

"मेरा अभिप्राय था···इनकी याद आई और मिलने चले आये।"

"तुम्हारे पति तो मेरे मित्र हैं।"

"और मैं शत्रु···यही ना ?"

"नहीं तो मेरा अभिप्राय था, तुम एक स्त्री हो···और यह···"

"क्या स्त्री किसी की मित्र नहीं रह सकती !"

"ब्याह के पश्चात् समाज की दृष्टि में ऐसी मित्रता कुछ अनुचित सी है।"

"यही कि कुछ और भी ?"

"और यह कि स्त्री की मित्रता का क्या विश्वास···"

माधुरी झुँझला उठी और पाँव से पानी के छींटे उड़ाती हुई झट उठकर वापस जाने लगी। राजेन्द्र ने लपककर उसका पल्लू पकड़ लिया। माधुरी ने झटके से पल्लू उससे छुड़ा लिया और तीखी दृष्टि से उसकी ओर देखने लगी।

"बुरा मान गई क्या ?" राजेन्द्र ने कुछ सोचते हुए नम्र स्वर में पूछा।

"आप बातें जो ऐसी करने लगे।"

"वह तो मैं हंस रहा था···माधुरी ! तुम्हें क्या बताऊँ कि इतने समय बाद अकस्मात् तुम्हें यहाँ देखकर मैं कितना प्रसन्न हुआ हूँ !"

"पुरुषों को बनाना खूब आता है।"

"क्या करें···स्त्रियाँ भी तो यही चाहती हैं,"—राजेन्द्र ने मुस्कराते हुए कहा। माधुरी के गम्भीर मुख पर भी मुस्कान खेलने लगी और वह फिर वहीं बैठ गई।

इन छोटे-छोटे चुभते हुए वाक्यों में दोनों को आनन्द आ रहा था। कालिज में भी वह ऐसे ही एक-दूसरे को छेड़ा करते थे। एक समय के पश्चात् दोनों के मन में एक साथ सोई हुई आकांक्षायें जाग्रत हुईं।

वासुदेव को गये हुए बड़ा समय हो चुका था। दोनों सब कुछ भुलाकर झील के किनारे अतीत को याद करके बातों में व्यस्त थे। वही पुरानी घनिष्ठता लौटती आ रही थी। माधुरी हरी, कोमल दूब पर पेट

के बल लेटी एक हाथ से झील के पानी को चीर रही थी और राजेन्द्र पास ही बैठा उसके मदमाते यौवन को निहार रहा था।

झील की लहरों के समान राजेन्द्र के मस्तिष्क में कई विचार उठ रहे थे। वह सोचने चला, 'वासुदेव को माधुरी से प्रेम नहीं और माधुरी के लिये विवाहित जीवन पहाड़ सा बन रहा है···ऐसे में वह फिर माधुरी को पाने का प्रयत्न करे तो इसमें बुरा क्या है···! वह दोनों तो एक-दूसरे को अब भी वैसे ही चाहते हैं। वह एक-दूसरे को भली प्रकार समझते हैं, इकट्ठे पढ़े हैं, उनके विचार मिलते हैं···।'

फिर सहसा उसे यह विचार आता कि वासुदेव उसका प्रिय मित्र है···वह मित्र से विश्वासघात करे? उसकी विवाहिता पत्नी के विषय में यूँ सोचे···और उसके अपवित्र विचार इस नई लहर से धुल जाते। परन्तु, फिर माधुरी पर दृष्टि पड़ती, उसका सौन्दर्य··· उसका अंग-अंग उसे पुकारता हुआ दिखाई पड़ता और फिर वही पहली लहरें चलने लगतीं··· उन दोनों ने मिलकर प्रेम-निर्वाह का प्रण किया था···कल्पना में अपने भावी जीवन के कितने सुन्दर महल बनाये थे—उन्होंने एक ही मन से मिलकर आज से कितना समय पहले कल्पना में अपने भविष्य का निर्माण किया था जिसमें वसंत ही वसंत होगी, फूल ही फूल होंगे और होगी भीनी-भीनी दो साँसों की सुगंध, दो हृदयों का संगीत—किन्तु, समय-चक्र आया और उसे युद्ध पर जाना पड़ा···वह अलग हो गये, कल्पना के महल ढह गये···और जब वह युद्ध से लौटा तो उसे पता चला कि माधुरी ने ब्याह कर लिया है।

अपने प्रेम का यह अन्त देखकर उसका मन टूट गया···उसका रुआँ-रुआँ पीड़ा से कराहने लगा···उसे संसार से घृणा सी हो गई और उसने कभी ब्याह न करने का प्रण कर लिया···बरसों वह इस ज्वाला में जलता रहा। उसने उसे भुला देने का बड़ा प्रयत्न किया, किन्तु, वह उसकी छवि को बिल्कुल मन से न मिटा सका···समय बीतता गया और वह शान्त

होता गया···अतीत और माधुरी का विचार उसके लिये इतना कष्टप्रद न रहा।

और अकस्मात् जब वह अपने मित्र के यहाँ आया तो बरसों की दबी ज्वाला धधक पड़ी। उसे इस बात का लेश-मात्र भी विचार न था कि वह अपनी प्रेमिका को देख पायेगा, और वह भी इतना निकट से।

माधुरी अब उठ बैठी थी और राजेन्द्र उसे एकटक देखे जा रहा था। भाग्य ने उन दोनों को दूर करके फिर मिला दिया था। न जाने कितनी देर वह उसे यूँ ही देखता रहता, यदि माधुरी यह प्रश्न न कर देती—

"यह आप मुझे घूर-घूरकर क्रोध से क्यों देख रहे हैं ?"

"क्रोध से नहीं, प्यार से···।"

"आपका मुख तो कुछ और ही कह रहा है।"

"किसी अन्यायी पर क्रोध आ रहा है।"

"किस पर ?"

"तुम्हारे पति पर, जो तुम्हें यूँ तड़पाकर अतृप्त मार रहा है, जो तुम्हारे यौवन से इतना विमुख है।"

माधुरी के मन को ठेस सी लगी। वह घुटनों में मुँह देकर कुछ सोचने लगी। राजेन्द्र ने देखा कि उसके माथे पर पसीने की बूँदें एकत्र हो गई थीं। कुछ देर यूँही मौन छाया रहा और फिर राजेन्द्र बोला—

"माधुरी ! एक बात पूछता हूँ, बताओगी ?"

"क्या ?"

"वचन दो कि झूठ न कहोगी।"

"आप पूछिये तो !"

"क्या तुम अब भी मुझ से प्यार करती हो ?"

राजेन्द्र की यह बात सुनकर वह सहसा काँप सी गई और झट मुँह मोड़कर खड़ी हो गई। अभी वह अपने प्रश्न को दोहरा भी न पाया था कि झील में चप्पुओं की ध्वनि सुनकर दोनों एक साथ मुड़े और सामने फैली

हुई झील को देखने लगे। दूर उस पार से एक नाव आ रही थी। दोनों ने एक दूसरे को देखा और माधुरी बोली—

"चलिये ! वह आ गये।"

दोनों वहाँ से उठकर चोरों की भाँति घर में आये और अपने-अपने कमरे में चले गये, मानो घर से बाहर गये ही न थे।

वासुदेव ने गोल कमरे में प्रवेश करते ही ऊँचे स्वर में गंगा को पुकारा। दोनों ने उसका स्वर सुना, किन्तु अपने-अपने कमरे में लेटे रहे। वासुदेव ने राजेन्द्र के कमरे में पाँव रखा और उसे यूँ लेटे देखकर बोला—

"यह क्या, अभी तक नहाये भी नहीं ?"

"नहीं, तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था।"

"माधुरी कहाँ है ?"

"अपने कमरे में होगी।"

राजेन्द्र की बात सुनकर वासुदेव अपने कमरे में गया। माधुरी कमरे की झाड़-पोंछ में लगी हुई थी। द्वार पट आहट हुई और वह सँभली। वासुदेव ने पूछा—

"क्या हो रहा है ?"

"आपकी प्रतीक्षा ; कहिए ! क्या बना बिचारे कोचवान का ?"

"डाक्टरों को सौंप दिया है, आशा है ठीक हो जायेगा।"

माधुरी कुछ और पूछना ही चाहती थी कि उसी समय राजेन्द्र द्वार के भीतर आया। उसे देखकर वह झेंप सी गई और अलमारी में कपड़े रखने लगी।

"राजेन्द्र ! तुम दोनों एक साथ कालेज में पढ़ते रहे हो ना ?" वासुदेव ने माधुरी की झेंप को भाँपते हुए मुस्कराकर राजेन्द्र की ओर देखा।

"हाँ तो··· ?"

"मुझे विश्वास नहीं आ रहा था।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि यह एक दूसरे से झेंपना—अपरिचितों सा बरताव—एक ही घर में दोनों का अलग-अलग कमरे में घुसे रहना...।"

"तो क्या करते ?" राजेन्द्र ने प्रश्न किया और एक छिपी दृष्टि से माधुरी की ओर देखने लगा।

"कुछ नहीं तो बातें ही करते।"

"बातें ! आपकी पत्नी से ! कैसे सम्भव था ?"

"क्यों ?"

"वह तो आप से भी अपरिचितों के समान रहती है, भला मुझसे क्या बोलेगी।"

वासुदेव संकेत को भाँप गया और चुप हो गया। माधुरी बाहर जाने लगी।

"माधुरी !" वासुदेव ने उसे जाते देखकर पुकारा।

"जी !" वह रुक गई किन्तु मुड़कर देखने का साहस न कर सकी।

"कहाँ चलीं ?" वासुदेव ने पूछा।

"आपके लिए नाश्ता लाने।"

"तुम दोनों क्या खा चुके ?"

"नहीं तो, आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे,"—माधुरी यह कहकर बाहर चली गई और वह राजेन्द्र के पास बैठकर उससे बातें करने लगा। आज राजेन्द्र के मुख पर कुछ परिवर्तन सा दिखाई पड़ रहा था। उसने चाहा कि अपने अतिथि-मित्र से इस बात का कारण पूछे पर कुछ सोचकर चुप हो गया।

कुछ समय पश्चात् वे लोग नाश्ते पर बैठे। माधुरी चाय बनाने लगी। तीनों में कुछ विचित्र तनाव सा था, घबराये से, घुटे से थे। सब मौन थे। वासुदेव अधिक समय तक इस वातावरण को सहन न कर सका और बोला, "राजी ! मेरी बात मानो तो अब तुम ब्याहकर डालो।"

"सहसा, यह विचार कैसे आया तुम्हें ?" राजेन्द्र ने पहले उसकी ओर फिर माधुरी की ओर देखा। माधुरी चाय में चीनी मिला रही थी। वह बात सुनते ही उसका हाथ रुक गया।

वासुदेव ने चाय का प्याला उठाते कहा, "हाँ, जीवन की सुख-सुविधा के लिए।"

"समय पर खाने को मिल जाये, पहनने को कपड़े मिल जायें। हर समय कोई प्रतीक्षा में दीवार पर खड़ा रहे···क्या जीवन की सुख-सुविधायें यहीं तक सीमित हैं ?"

"सुख-सुविधा में तो बहुत कुछ है, किन्तु थोड़ा सा भी सुख देने वाले साथी में एक गुण होना आवश्यक है,"—वासुदेव ने चाय पीते हुए कहा।

"क्या ?" राजेन्द्र ने पूछा।

"इस सुख और प्यार में उपकार की भावना न हो, जो कुछ हो मन से हो।"

उसी समय दोनों ने एक साथ माधुरी को देखा। वह चुपचाप किसी विचार में डूबी धीरे-धीरे चाय पी रही थी। उसके माथे पर पसीने की बूँदें झलक रही थीं।

वासुदेव ने प्यार से माधुरी का हाथ अपनी हथेली में लेकर कहा—"क्या मैंने झूठ कहा है, माधुरी ?"

"जी ! आप···," वह चौंक गई और फिर सँभलते बोली, "आप कभी झूठ कह सकते हैं !"

यह कहकर वह उठी और चाय का पानी लेने बाहर चली गई। राजेन्द्र ने पहले उसे और फिर वासुदेव को देखा। वह झेंप गया। आँगन में गंगा खड़ी थी, उसने माधुरी के हाथ से चायदानी ले ली। माधुरी भीतर लौट आई और उनके पास से होकर दूसरे कमरे में जाने लगी। अभी वह कमरे में ही थी कि राजेन्द्र ने होंटों पर हँसी उत्पन्न करते हुए

कहा—

"तो भाई ! एक लड़की ढूँढ़ दो ना !"

"कैसी लड़की चाहिये ?"

"जैसी तुम पसन्द करो।"

"मेरी पसन्द ! वह तो माधुरी जैसी ही होगी।"

"तो ऐसी ही ला दीजिये।"

वासुदेव झेंप गया और चुप हो गया। राजेन्द्र ने उसके मन में उठते हुए ज्वार-भाटे को भाँप लिया था और साथ ही पर्दे के नीचे उन लाल सलीपरों को भी देख लिया था जो संगमरमर के समान कोमल और गोरे-गोरे पैरों को छिपाये हुए थे। माधुरी छिपकर उनकी बातें सुन रही थी। थोड़े समय तक दोनों चुप रहे। गंगा ने आकर चाय का पानी रख दिया और राजेन्द्र प्यालों में चाय उंडेलने लगा।

"वासुदेव ! इन पहाड़ियों में क्या तुम्हारा मन नहीं घबराता ?" राजेन्द्र ने पूछा।

"मैं यहाँ अकेला तो नहीं···माधुरी है और उसके साथ क्या बुरा लगेगा !"

"मेरा अभिप्राय है—यह वातावरण, यह सूना-सूना घर···एक-दो बच्चे होते तो यह मौन दीवारें चहकने लगतीं।"

"राजेन्द्र ने ध्यानपूर्वक देखा। यह बात सुनकर वासुदेव का मुख पीला पड़ गया था। चाय का प्याला कठिनता से उसके हाथ से गिरते-गिरते बचा था। उसने उसके और माधुरी के खाली प्याले में चाय उँडेली और हिलते हुए पर्दे को देखकर ऊँचे स्वर में पुकारा।

माधुरी झट दूसरे कमरे से निकल आई। राजेन्द्र ने प्याला उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा—

"लो···चाय ठंडी हो रही है।"

"और इच्छा नहीं।"

"अब तो ले लो बना हुआ है···साथ के लिए ही सही।"

वह चुप हो गई और प्याला थामकर चाय पीने लगी। तीनों चुप थे···अपने-अपने विचार में, किन्तु तीनों के विषय का केन्द्र एक था।

५

"माधुरी !"

"ओह ! आप !"

"वासुदेव कहाँ है ?"

"चले गये ।"

"कहाँ ?" राजेन्द्र विस्मय से बोला ।

"झील के उस पार···आधीरात को कोई व्यक्ति आया था । कोचवान की दशा कुछ बिगड़ गई है···शायद उसे शहर ले जाना पड़े ।"

"कब लौटेगा ?"

"कुछ कह नहीं गये···यदि शहर चले गये तो सम्भव है रात हो जाये ।"

राजेन्द्र उसकी बात सुनकर चुप हो गया । वह अभी-अभी बिस्तर से उठा था और वासुदेव को ढूंढता हुआ माधुरी के कमरे में आया था । वह उस समय ड्रेसिंग टेबल को ठीक लगा रही थी । राजेन्द्र ने मेज़ पर रखा अखबार उठाया और बालकनी में कुर्सी बिछाकर उसको पढ़ने लगा ।

सवेरे का सुहाना समय था । झील की ओर से आती हुई शीतल पवन शरीर में नवजीवन भर रही थी । आरम्भ के दिनों में वासुदेव के चले जाने पर राजेन्द्र को बड़ा विचित्र सा लगता था । उसकी अनुपस्थिति में वह बड़ा एकाकीपन सा अनुभव करता और दिन भर खोया-खोया

सा रहता, किन्तु अब उसे उसकी अनुपस्थिति न अखरती। माधुरी के साथ अकेले में बोलने-चालने और हँसने-खेलने में उसे एक मानसिक तृप्ति मिलती। उसके होते दोनों में कोई भी खुलकर बातें कर सकता। माधुरी ऐसी स्थिति में क्या सोचती होगी, क्या अनुभव करती होगी, इसका वह ठीक अनुमान न लगा सकता था।

उसकी पीठ पर आहट हुई, किन्तु ; वह मुड़ा नहीं। आने वाले के पैरों की चाप उसकी जानी-पहचानी थी। बालकनी का पर्दा हटा और माधुरी चाय का प्याला लिये हुए उसके सामने आ खड़ी हुई। राजेन्द्र ने सरसरी दृष्टि उस पर डाली और कहा—

"गंगा से कह दिया होता।"

"अतिथि का ध्यान जितना हम रख सकते हैं···नौकर नहीं रख सकते।"

"तो क्या तुम अभी तक मुझे अतिथि ही समझ रही हो ?"

"जी···आपका अपना व्यवहार ही कुछ अतिथियों सरीखा है।"

"क्यों ? मैंने ऐसी क्या बात की है ?"

"जब से मन की बात कही है···आप अनजान से बन बैठे हैं··· अपरिचितों का सा व्यवहार करने लगे हैं···दोष मेरा ही है···मुझे आप से यह सब कुछ न कहना चाहिये था।"

"नहीं माधुरी ! ऐसी बात नहीं—सोचता हूँ भावना में आकर भूल से कुछ ऐसी बात न कर बैठूँ कि मित्र की दृष्टि में मुझे हीन होना पड़े···"

"आप तो बड़ी दूर की सोचने लगे।"

राजेन्द्र ने कोई उत्तर न दिया और चाय पीने लगा। कुछ देर बाद बोला, "आज दिन क्योंकर कटेगा ?"

"कुछ हँसते और कुछ रोते।"

"वह कैसे ?"

"यही तो जीवन है···कुछ हँस के कट जाता है और कुछ रोकर।"

"जब रोने लगो तो मुझे पहले बता देना···मुझे रोना कठिनता से आता है।"

राजेन्द्र की बात सुनकर माधुरी खिल-खिलाकर हँस पड़ी। आज उसकी मुस्कान में कुछ विशेष मोहनी थी जो इससे पहले उसने कभी अनुभव न की थी। उसका मुख पहले से खिला हुआ था जैसे मलयानिल से कोई कली फूट पड़ी हो।

उसी समय चौकीदार वासुदेव का सन्देश लेकर आया, "मालिक रात तक न आ पायेंगे।"

"क्यों? सब कुशल तो है?"

"कोचवान के शरीर में विष फैल गया है और वह उसे शहर में बड़े हस्पताल ले गये हैं।"

चौकीदार यह सूचना देकर चला गया। राजेन्द्र ने देखा, उसका मुख क्षण भर के लिए मलिन हुआ और फिर खिल उठा। राजेन्द्र से आँखें मिलाते हुए धीरे से कहा—

"चलो, यह कष्ट भी दूर हुआ।"

"कैसा कष्ट?"

"प्रतीक्षा का···वह रात से पहले न लौटेंगे।"

"तब तो दिन मेरे लिए पहाड़ बन जायेगा।" राजेन्द्र ने बनते हुए कहा।

"क्यों? क्या मैं आपके पास नहीं हूँ?"

"तुम हो तो क्या? उनकी और बात है। वह पुरुष, तुम ठहरीं स्त्री। स्त्री से तो मन खोलकर बात भी नहीं कर सकते।"

राजेन्द्र की व्यंगात्मक बात सुनकर वह गम्भीर हो गई और मुँह बनाकर बाहर जाने लगी। राजेन्द्र ने उसे रोककर कहा—

"बिगड़ गईं?"

"मैं कोई पुरुष तो नहीं हूँ, जो आप मेरे साथ को साथ समझें। मैं

कौन होती हूँ आपकी ?"

"इसीलिए तो कहता हूँ, स्त्री का मन बहुत छोटा होता है ।"

"कहिये तो चौकीदार को भिजवा दूँ ! पुरुष है और शरीर से तगड़ा भी । आपका दिन अच्छा कट जायेगा ।"

माधुरी की बात सुन वह जोर से हँसने लगा । उसने देखा कि वह भी दबे होंटों मुस्करा रही है । राजेन्द्र ने उसे बाँह से थामते हुए कहा—

"एक बात कहूँ, मानोगी ?"

"कहिये !"

"चलो, कहीं पिकनिक को चलें !"

उसका प्रश्न सुनकर माधुरी घबरा गई थी कि न जाने वह क्या कहेगा ; किन्तु, पिकनिक का प्रस्ताव सुनकर उसका मुख चमक उठा । क्षण भर के लिये उसने कुछ सोचा और स्वीकृति में सिर हिलाते भीतर भाग गई ।

कुछ समय पश्चात् दोनों झील के किनारे हाथ में हाथ दिये बढ़ते जा रहे थे । पिकनिक के सामान के झोले उन्होंने कंधों से लटका रखे थे ।

उन्होंने पिकनिक के लिये वही स्थान चुना, जहाँ एक दिन वह तीनों आये थे । उस दिन की अपेक्षा आज वह अति प्रसन्न थे । आज उन्हें कोई भय न था, वह स्वतंत्र थे । उन्हें ऐसा लग रहा था कि विधि ने उन्हें एक ऐसे गोलाकार में रख दिया जो धीरे-धीरे छोटा होता जा रहा है यहाँ तक कि वह शीघ्र एक दूसरे में मिल जायेंगे, एक हो जायेंगे ।

"आज तैरना न सिखाओगे ?" माधुरी न बैठते हुए धीरे से राजेन्द्र को कहा ।

"एक वचन पर ।"

"क्या ?" माधुरी सोच में पड़ गई कि वह कौनसा वचन माँगने वाला है । उसका मुख फिर गम्भीर पड़ गया ।

"मेरे साथ मँझधार तक चलना पड़ेगा ।"

"यदि डूब गई तो···?"

"नहीं, मैं किसलिये हूँ ?"

"आपका क्या विश्वास—कहीं हाथ छोड़ दें तो···"

"तो मैं कहाँ जाऊँगा ?" हँसते हुए राजेन्द्र बोला।"

"धोखा दिया तो ?"

"राजेन्द्र ने उसकी बाँह पकड़ ली और अपनी ओर खींचते हुए बोला, "धोखा तो स्त्री देती है, पुरुष नहीं।"

यह कहते हुए वह उसे खींचकर अपने साथ पानी में ले गया। स्थिर पानी में हलचल सी मच गई और दूर-दूर तक लहरें वृत्ताकार से बनाती चली गईं। हाथ-पाँव चलाने से पानी उछलने लगा। माधुरी की चीखों से और फिर दोनों की मिली-जुली हँसी से वातावरण गूँजने लगा। राजेन्द्र हाथों से उसकी पीठ को सहारा दिये हुए था और वह धीरे-धीरे तैरती हुई गहरे पानी की ओर जा रही थी। कभी कोई मछली धीरे से उसके शरीर को छू जाती तो एक बिजली सी दौड़ जाती और वह एक गुदगुदी सी अनुभव करने लगती।

तैरते-तैरते वह थक गई। उसके हाथ-पाँव शिथिल पड़ गये और राजेन्द्र ने दोनों हाथों में उसके कोमल शरीर को थाम लिया। माधुरी ने शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दिया और गठड़ी सी बनी उसकी बाँहों में आ गई। इस शीतल जल में भी उसके गोरे शरीर की हल्की सी गर्मी उसे रोमांचित कर रही थी। उसने प्यारभरी दृष्टि से उसको देखा और उसके अतृप्त जीवन पर उसे तरस सा आने लगा।

पानी से निकालकर उसने धीरे से उसे झील के किनारे की हरी दूब पर खड़ा कर दिया। उसके शरीर से चिपके हुए कपड़ों से पानी निचुड़ रहा था और वह आँखें बन्द किये अपने शरीर का बोझ उस पर डाले खड़ी थी। राजेन्द्र ने हल्के से उसके गालों को थपथपाया। उन्मादित अँखड़ियाँ धीरे से खुलीं और वह अपने पाँव पर खड़ी हो गई।

राजेन्द्र ने सहारा देकर उसे घास पर बिठा दिया और स्वयं थोड़ी दूर औंधा लेटकर सुस्ताने लगा ।

न जाने कितनी देर तक दोनों बेसुध पड़े रहे। राजेन्द्र अभी तक उस गुदगुदाहट का आनन्द ले रहा था, जो माधुरी के शरीर के स्पर्श से अनुभव हुआ था।

बहुत देर के मौन के पश्चात् राजेन्द्र ने धड़ उठाकर माधुरी को कुछ कहने के लिये उसकी ओर देखा। अभी उसका नाम ही उसके होंटों से निकला था कि एकाएक चुप हो गया और भौंचक इधर-उधर देखने लगा। वह अपने स्थान पर न थी।

वह तेज़ी से उठा और चबूतरे की ओर देखने लगा। सामान ज्यों का त्यों वहाँ रखा था, किन्तु माधुरी वहाँ न थी। उसने झील में दृष्टि दौड़ाई किन्तु, वहाँ भी कुछ दिखाई न दिया। अचानक जहाँ वह लेटी थी वहाँ धरती पर खुदे कुछ शब्द देखकर वह रुक गया। गीली धरती पर अंग्रेजी में खुदा हुआ लिखा था—"Love you."

राजेन्द्र ने फिर एक बार चारों ओर ध्यानपूर्वक देखा। घूमती हुई उसकी दृष्टि सामने झाड़ियों पर जा रुकी, जहाँ माधुरी के कपड़े फैले सूख रहे थे। उसने एक बार फिर धरती पर खुदे हुए शब्दों को पढ़ा और उस ओर बढ़ने के लिए पाँव उठाये, किन्तु कुछ सोचकर रुक गया और गर्दन मोड़कर दूसरी ओर देखने लगा। थोड़ी देर बाद उसने फिर मुड़कर झाड़ियों की ओर देखा। अब कपड़े वहाँ न थे। अभी वह सोच ही रहा था कि माधुरी झाड़ियों से निकली। राजेन्द्र ने उसे देखा और दूसरी ओर गर्दन मोड़ ली मानो अभी तक उसे देखा ही न हो।

माधुरी ने चोर-दृष्टि से उसे अपनी ओर देखते हुए भांप लिया था और उस ओर आने के स्थान पर खंडहर की उस गुफा की ओर मुड़ गई जहाँ राजेन्द्र के यहाँ आने पर एकान्त में उनकी प्रथम भेंट हुई थी, और माधुरी ने अपने दुखी मन का रहस्य उससे कह डाला था। गुफा के भीतर

जाने से पूर्व उसने एक बार मुड़कर फिर राजेन्द्र की ओर देखा। वह अभी तक वहीं बैठा हुआ था, जाने किस कल्पना, किस सोच में था।

वह गुफा के भीतर ओट में खड़ी होकर उसकी प्रतीक्षा करने लगी। जो बात उसके मुँह से न निकल सकी थी वह उँगली से धरती पर लिख आई थी। उसे विश्वास था कि वह अवश्य आयेगा···इस एकान्त में वह उसके पास अवश्य आयेगा और उसके मन की धड़कन धरती पर लिखे हुए शब्दों को स्वयं दोहरा देगी। वास्तव में राजेन्द्र से वह प्रेम करती थी···वासुदेव उसके प्रेम को न जीत सका था।

उसने गुफा में से झाँककर फिर बाहर देखा। वह अभी तक अपने स्थान पर बैठा था। माधुरी के मन को चोट सी लगी। वह अधीर हो रही थी और वह उसकी भावनाओं से अनभिज्ञ वहीं बैठा था। वह सोचने लगी, 'क्या उसे निराश होना पड़ेगा···पर ऐसे क्योंकर हो सकता है? वह स्वयं ही तो कई बार बातों-बातों में उस से प्रेम जता चुका है।'

एक बार उसने फिर चोर-दृष्टि से उधर देखा। राजेन्द्र अपने स्थान से उठकर उसकी ओर आ रहा था। उसके मन में गुदगुदी होने लगी और शरीर में सिहरन सी दौड़ गई। वह साँस रोके थोड़ा और आगे बढ़ गई और अँधेरे में छिपकर उसकी प्रतीक्षा करने लगी। उसकी दृष्टि गुफा के प्रवेश द्वार पर लगी हुई थी।

"माधुरी···!" किसी ने धीरे से पुकारा। वह अँधेरे में दीवार से चिपककर खड़ी हो गई। फिर पुकार सुनाई दी और वह साँस रोककर और सिमट गई। राजेन्द्र अब गुफा में प्रवेश कर चुका था और अँधेरे में उसे टटोलता हुआ उससे आगे बढ़ गया। अब उसने ऊँचे स्वर में उसका नाम लेकर पुकारा। माधुरी छिपी हुई उसे साफ देख रही थी। यह वहीं स्थान था जहाँ कुछ दिन पहले उसने राजेन्द्र से अपने मन की बात कही थी। आज फिर वह वहीं इकट्ठे हो गये थे और वह उसे प्रेम का सन्देश देने के लिये व्याकुल हो रही थी। उसके होंट मन की भावनाओं को

उगल देने के लिये बेचैन थे···आज वह अपने मन में कुछ गुप्त न रखना चाहती थी।

राजेन्द्र विस्मय में खड़ा अपने सामने देख रहा था। माधुरी धीरे-धीरे दबे पाँव उसके पीछे खड़ी हो गई। उसने एक बार फिर जोर से पुकारा, "माधुरी !" आवाज की गूँज लौटकर उसके कानों से टकराई। वातावरण में गूँज से एक थरथराहट सी हुई। माधुरी ने पीछे से अपना हाथ उसके कंधे पर रख दिया। राजेन्द्र चौंककर मुड़ा और उसने दोनों हाथ उसके गले में डालकर सिर उसके वक्ष से टिका दिया। उसका शरीर अंगारों के समान तप रहा था और वह उखड़े हुए स्वर में धीरे-धीरे बुड़बुड़ाने लगी—

"राजी ! मेरे राजी ! मुझ में और धैर्य नहीं।···परीक्षा देने की शक्ति मुझ में नहीं रही···देखो तो मेरा कलेजा धड़क रहा है···अब और मत तरसाओ···मैं कहाँ तक ज्वाला में जलती रहूँ···"

वह कहे जा रही थी और राजेन्द्र सुने जा रहा था। इसके अपने रोएँ-रोएँ में बिजली सी भर गई। उसने अपनी बाँहें उसकी कमर में डालकर उसे भींच लिया···और भींच लिया, यहाँ तक कि दोनों हृदयों की धड़कन एक हो गई···साँसें एक दूसरे से मिल गयीं। इस मिलन में शान्ति थी, सुख था, जिसके लिए वह लगभग तीन वर्ष से तड़प रही थी। राजेन्द्र ने अपने जलते हुए होंट उसके केशों की घनी छाया में रख दिये।

माधुरी एक उन्माद में धीरे-धीरे रुककर कहे जा रही थी···वही शब्द जो शायद वर्षों पहले भी उसने राजेन्द्र से कहे हों···परन्तु फिर भी इनमें नवीनता थी···अछूतापन था···प्रेम दोहराने पर पुराना नहीं हो जाता···परन्तु, परस्थिति बदल चुकी थी···क्या उसे यह शब्द दोहराने का अधिकार था ? यहाँ अधिकार क्या है, अनधिकार क्या है···कोई नहीं जानता है···।

६

जब दोनों ड्योढ़ी पार करके आँगन में पहुँचे तो शाम अपने पंख फैला चुकी थी। दोनों चुप थे और अभी ही उन्हें सुध आई थी कि वह दिन भर बाहर रहे हैं...डर रहे थे कि वासुदेव क्या सोचेगा।

आहट सुनकर गंगा ने बाहर आकर पिकनिक का सामान पकड़ लिया। माधुरी ने धीरे से डरते-डरते पूछा—

"वह आ गये क्या ?"

"नहीं, बीवीजी ! अभी तो नहीं लौटे...न कोई और खबर ही आई है,"—गंगा ने गम्भीर मुख से कहा और सामान उठाकर भीतर चली गई।

माधुरी ने आँख उठाकर राजेन्द्र की ओर देखा और दोनों मुस्करा दिये। उनका भय अकारण ही था।

गोल कमरे में प्रवेश करते ही राजेन्द्र ने लैम्प जलाने के लिये हाथ बढ़ाया। माधुरी ने उसका हाथ रोक लिया और अपने गालों पर रखते हुए बोली—

"रहने दो..."

"क्यों ?"

"न जाने क्यों ? आज अँधेरा भला सा लग रहा है।"

"अभी तो भला लगता है, किन्तु थोड़ी देर बाद यही खाने लगेगा।"

"कैसे ?"

"जब रात और बढ़ जायेगी, सन्नाटा छा जायेगा···मैं अपने कमरे में और तुम अपने कमरे में···दोनों अकेले···फिर यही अँधेरा नागिन बन जायेगा।"

'यह आपने कैसे कहा कि मैं अकेली रहूँगी ?"

"वासुदेव अब सवेरे से पहले क्या लौटेगा ?"

"आप जो हैं,"—वह उसके कोट के बटनों को प्यार से उँगलियों में मरोड़ते बोली।

"मैं ! तुमसे इतनी दूर···"

"दूरी क्या ? मन में तो अन्तर नहीं···राजी ! सच पूछो, वह पास भी हों तो यूँ लगता है जैसे कोसों का अन्तर हो···और तुम दूर भी हो तो यूँ अनुभव होता है मानो पास बैठे हो।"

"सच···माधुरी ! न जाने मन का भय क्यों नहीं जाता···सोचता हूँ यदि हमारे प्रेम का रहस्य वासुदेव जान गया तो मैं तो कहीं का न रहूँगा।"

"प्रेम और कायरता ? साहस से काम लेना पड़ेगा।"

"यदि उसने हमें यूँ इकट्ठे देख लिया तो···"

"घबराओ नहीं···वह कुछ न कह सकेंगे···उनमें इतना साहस ही नहीं···और सम्भव है तुम्हें प्रेम करते देखकर इर्ष्या से स्वयं भी प्रेम करना सीख जायें।"

"तो क्या वास्तव में उसके हृदय नहीं ?"

"ऐसा ही समझ लो···!"

"उस दिन मस्त घोड़े को उसने कैसे चाबुकों से वश में कर लिया था···वह दृश्य सामने आता है तो मन काँपने लगता है।"

कुछ क्षण चुप रहने के बाद वह खिसियानी हँसी हँसते बोली—

"वह केवल घोड़े को वश में करना जानते हैं···स्त्री को नहीं···प्रेम क्या है ? आकांक्षायें क्या हैं ?···यह वह नहीं जानते। मुझे तो विश्वास

नहीं कि भगवान् ने उन्हें हृदय भी दिया है !"

यह कहते हुए वह अपने कमरे की ओर जाने लगी। राजेन्द्र ने उसका हाथ पकड़ते पूछा—

"कहाँ ?"

"कपड़े बदलकर अभी आई।"

"कॉफ़ी न पिलाओगी क्या ?"

"आप भी कपड़े बदल लें···मैं अभी गंगा से···"

"गंगा से नहीं···तुम्हारे हाथों से···"

"तो थोड़ी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।"

"स्वीकार है।" राजेन्द्र ने उसका हाथ छोड़ दिया और वह तेज़ी से अपने कमरे में चली गई।

राजेन्द्र मुँह ही मुँह कुछ गुनगुनाता हुआ लैम्प जलाने के लिये मेज की ओर बढ़ा। आज हर्ष में स्वयं ही उसके हृदय से गीत फूट रहे थे।

कमरे में प्रकाश हुआ और वह भौंचक सा रह गया। सामने वाले कोने में कोई दीवार की ओर मुँह किये आराम कुर्सी पर लेटा था। राजेन्द्र को समझने में देर न लगी। वासुदेव को देखकर वह सहसा काँप गया और उसका शरीर पसीने में यूँ भीग गया मानो किसी ने घड़ों पानी में नहला दिया हो।

राजेन्द्र का मुख पीला पड़ गया। आँखें झुक गईं और लज्जित होकर वह हाथों की उँगलियाँ तोड़ने लगा। वही कुछ हुआ जिसका उसे भय था। एक ही क्षण में वह अपने मित्र की दृष्टि से गिर गया था। उसे यूँ अनुभव हुआ मानो किसी ने उसे ऊँचाई से खड्डे में धकेल दिया हो।

थोड़ी देर के मौन के पश्चात् उसने वासुदेव को अपने स्थान से उठते देखा। वह उठकर उसके सामने आ खड़ा हुआ और बलपूर्वक होंटों पर मुस्कराहट उत्पन्न करते हुए बोला, "घबराओ नहीं मित्र ! माधुरी सच ही कहती है, मैं केवल घोड़े ही को वश में ला सकता हूँ···मानव को

नहीं···मुझ में यह भावना ही नहीं, मेरा मन पत्थर बन चुका है···मर चुका है···भला मैं तुम लोगों के सामने आने के योग्य ही कहाँ हूँ···? मुझे तो अपनी मित्रता पर गौरव है—जो काम मैं तीन बरसों में न कर सका, मेरे मित्र ने दिनों में कर दिया—विश्वास जानो, मुझे तुम से घृणा नहीं हुई, बल्कि तुम दोनों के प्रति सहानुभूति और बढ़ गई है।"

वासुदेव की एक-एक बात विष बनकर उसके कानों में उतरती रही। राजेन्द्र इसे अधिक सहन न कर सका और तेज-तेज पाँव उठाता अपने कमरे में चला गया। रास्ते में माधुरी के कमरे से गुनगुनाहट की ध्वनि सुनाई दी। अपनी तरंग में, उस बिजली से अनभिज्ञ जो अभी-अभी राजेन्द्र पर गिरी थी, वह हृदय की ताल पर कोई मधुर गीत गुनगुना रही थी।

राजेन्द्र के कानों में वह बातें गूँज रही थीं, जो कमरे में प्रकाश होने से पूर्व वह माधुरी से कर रहा था। उस समय वासुदेव के हृदय में जो ज्वाला भड़क रही होगी उसकी कल्पना से उसकी धमनियों में क्षण भर के लिए लहू सा जम गया।

उसने तुरन्त, वह स्थान छोड़ने का निर्णय कर लिया। अपना सूटकेस निकाला और इधर-उधर बिखरे हुए कपड़े सँभालने लगा। उसके चले जाने के बाद इस घर में क्या होने वाला है, इसका विचार आते ही उसका रोआँ-रोआँ काँप उठा···यदि वासुदेव ने बल का प्रयोग किया तो···उसे सहसा मस्त घोड़े वाली घटना स्मरण हो आई।

अभी वह पूरे कपड़े समेट न पाया था कि किसी ने बढ़कर पीछे से उसका हाथ थाम लिया। वह घबराकर उछला और झट मुड़कर वासुदेव को देखने लगा, जो ज़ोर से उसकी कलाई अपने हाथ में लिए था। दोनों ने उखड़ी हुई दृष्टि से एक दूसरे को देखा।

"मित्र बन कर आये हो, अब शत्रु बनकर न जाने दूँगा।" बोझल हृदय से पीड़ा भरे स्वर में वासुदेव उससे बोला।

"मित्रता क्या और शत्रुता कैसी…अपनी इच्छा से आया था और अपनी इच्छा से जा रहा हूँ।" झटके से अपना हाथ छुड़ाते हुए उसने कहा।

"आग तो लगा चले हो, उसे बुझायेगा कौन ?"

राजेन्द्र ने वासुदेव की बात सुनकर आश्चर्य में उसे देखा। वासुदेव बात को चालू रखते बोला—

"मेरा अभिप्राय माधुरी से था। उसके मन में जो प्रेम की चिंगारी सुलगाई है, उसे क्या यूँ ही छोड़ जाओगे ?"

"तुम क्या समझते हो, मैं तुम से डर गया हूँ ? लज्जित हूँ और अपना मुँह छिपाकर दूर भाग रहा हूँ…मित्र मुझे अपने किये पर कोई पछतावा नहीं—सम्भव है मेरे इस व्यवहार ने तुम्हारी सोई हुई भावनाओं को जाग्रत कर दिया हो और तुम किसी दूसरे के जीवन से खेलना छोड़ दो…"

यह कहते ही राजेन्द्र ने अपना सूटकेस उठाया और बाहर जाने लगा। वासुदेव ने लपककर उसकी बाँह पकड़ ली और ऊँचे स्वर में बोला, "यह क्या मूर्खता है ?"

अभी वह दोनों आपस में झगड़ ही रहे थे कि सामने से माधुरी को आते देखकर झेंप गये। माधुरी भी उन्हें अचानक देखकर विस्मित रह गई। 'वासुदेव कब और कैसे आया ?' अभी वह यह सोच भी न पाई थी कि वातावरण का रंग बदलने के लिये वासुदेव झट से बोला—

"माधुरी ! तुम ही समझाओ…यह क्या हठ है ?"

"क्या ?" वह आँखें फाड़ते बोली।

"रूठकर जाने को तैयार हो गया है…कहता है दिन भर मेरे बिना मन नहीं लगा…अब तुम ही कहो, मैं कैसे न जाता ?…उसके तो प्राणों पर बनी थी।"

"कोचवान का क्या हुआ ?" माधुरी ने झट पूछा।

"बिचारा मर गया,"—उसने धीरे से उत्तर दिया।

यह सुनकर दोनों का कलेजा धक सा रह गया। उसी समय ड्योढ़ी में बँधा घोड़ा ज़ोर से हिनहिनाया। उसकी हिनहिनाहट में एक विशेष क्रूरता थी। वासुदेव ने दुखी मन से कहा, "आज इस पालतू पशु ने घर के व्यक्ति के ही प्राण ले लिये।"

"कॉफ़ी बनी रखी है।" माधुरी ने धीमे स्वर में कहा और बाहर चली गई। वासुदेव ने सूटकेस राजेन्द्र के हाथ से लेकर एक ओर रख दिया और उसके कंधे पर हाथ रखते बोला, "आओ...कॉफ़ी पियेंगे।"

राजेन्द्र अनमना सा विवश वासुदेव के साथ बालकनी में आ गया। माधुरी पहले ही वहाँ कॉफ़ी बना रही थी। दोनों कुर्सियों पर बैठ गये। वासुदेव ने बलपूर्वक हँसते हुए कहा—

"थूक दो अब इस क्रोध को राजी! वचन देता हूँ, अब तुम्हें अकेले छोड़कर नहीं जाऊँगा।"

राजेन्द्र चुप रहा और कॉफ़ी का प्याला उठाकर पीने लगा। माधुरी ने दूसरा प्याला पति की ओर बढ़ाते हुए पूछा—

"आप कब आये?"

"अभी तो चला आ रहा हूँ।"

फिर सब चुप हो गये। माधुरी सोच रही थी शायद राजेन्द्र जान-बूझकर बन रहा है, इसलिए उसके मौन पर उसने कोई ध्यान न दिया।

एक ही साँस में कॉफ़ी का प्याला समाप्त करके राजेन्द्र उठ खड़ा हुआ और बाहर जाने लगा। वासुदेव ने उसे रोकने का बड़ा प्रयत्न किया किन्तु; बिना कोई बात कहे वह लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ नीचे उतर गया और ड्योढ़ी में गंगा से कुछ कहकर बाहर निकल गया।

जब गंगा कॉफ़ी के बर्तन उठाने आई तो वासुदेव ने पूछा, "क्या कहता था राजेन्द्र?"

"रात के खाने को मनाही कर गये हैं,"—गंगा ने उत्तर दिया।

वासुदेव चुप हो गया और जब गंगा बर्तन उठाकर चली गई तो उसने माधुरी से पूछा—

"आज दिन भर कैसे कटा ?"

"जी !" वह सिर से पाँव तक काँप गई।

"मेरा अभिप्राय है, कहीं वह दिन-भर अकेला तो नहीं बैठा रहा ?"

"नहीं तो...खाना एक साथ खाया था...अब कॉफ़ी भी ला रही थी।"

"बस, एक साथ खाना ही खाया...कहीं घूमने को ले गई होतीं।"

"दोपहर को तो वह सोये रहे...और मैं..."

"और तुम ?"

"मैं भला उन्हें क्योंकर ले जाती ?"

"यही बात तो तुम स्त्रियों की बुद्धि में नहीं समाती—अच्छा, तुम खाना तैयार करो, मैं उसे मनाकर लाता हूँ।"

"वह न माने तो ?"

"कैसे न मानेगा ! मैं अपने मित्र को भली प्रकार समझता हूँ।" बासुदेव ने असावधानी से उत्तर दिया और उसके पीछे-पीछे घर से बाहर चला आया।

झील के किनारे बहुत दूर तक जाने पर भी राजेन्द्र उसे कहीं दिखाई न दिया। अचानक झील के तल पर उसे पानी के उछलने की आवाज़ सुनाई दी जैसे किसी ने मौन जल में पत्थर गिराकर हलचल मचा दी हो। उसने झट मुड़कर देखा। राजेन्द्र नाव से पीठ लगाये बैठा कुछ सोच रहा था।

"तुम यहाँ ? मैं तो डर रहा था।" वासुदेव ने उसकी ओर देखते पूछा।

"क्यों ? यह सोचकर कि कहीं मैं झील में डूबकर आत्महत्या न कर लूँ ?"

"छी-छी···यह आज तुम्हें हो क्या गया है ?" वासुदेव राजेन्द्र के समीप बैठ गया। राजेन्द ने गर्दन दूसरी ओर मोड़ ली और किनारे पर पड़े हुए कंकर उठाकर झील में फेंकने लगा।

कुछ देर दोनों चुपचाप बैठे रहे। राजेन्द्र थोड़े-थोड़े अन्तर के बाद पानी में एक पत्थर फेंकता, हल्का सा धमाका होता और फिर मौन छा जाता। बैठे-बैठे राजेन्द्र स्वयं ही कहने लगा, 'मैं कल जा रहा हूँ।'

"मुझे मँझधार में छोड़कर···क्या इसी दिन के लिए यहाँ आये थे ?"

"वासुदेव ! मैं विवश हूँ···मैं न जानता था कि मेरा यहाँ आना हम दोनों के लिए इतनी बड़ी समस्या उत्पन्न कर देगा कि जीना दूभर हो जाये।"

"यह तुम क्या सोच रहे हो···? तुम नहीं जानते कि मैं तुम्हारा कितना आभारी हूँ···तुमने तो मेरी सोई हुई आकांक्षाओं को झँझोड़ दिया है···तुमने मेरे नीरस जीवन में रस भर दिया···कुछ दिनों से माधुरी को बदला हुआ पा रहा था···मैं तो धन्यवाद भी नहीं कर पाया।"

राजेन्द्र ने ध्यानपूर्वक वासुदेव की आँखों में झाँका। एक-एक शब्द विश्वास बनकर निकल रहा था···उसमें तनिक भी बनावट की झलक न थी, हर बात मन से निकली प्रतीत होती थी। वह यह सोच भी न सकता था कि कोई पति अपनी पत्नी के लिए ऐसे शब्दों का प्रयोग कर सकता है···उसकी समझ में कुछ न आ रहा था।

वासुदेव की आँखों में आँसू झलक रहे थे। राजेन्द्र ने क्रोध और सहानुभूति के मिश्रित भावों से उसे देखा और बोला—

"उन पतियों का यही अन्त होता है जो अपनी पत्नियों की ओर ध्यान नहीं देते···जो उनकी भावनाओं को उभरने से पहले ही दबा देते हैं···उन्हें अंगारों की सेज पर लिटा देते हैं और फिर पछताते हैं, लज्जित होते हैं, आँसू बहाते हैं, उन्हें चरित्रहीन और बेवफा ठहराते हैं, जब···

जब···," वह कुछ क्षण के लिए रुक गया और फिर धीरे से बोला, "जब वह किसी जान-पहचान के व्यक्ति अथवा किसी नौकर के साथ भाग जाती हैं ।"

अन्तिम शब्द उसने कुछ इस दृढ़ता से कहे कि वह वासुदेव के मन में साँप के समान रेंग गये । पलकों पर आये आँसुओं को पीते हुए दुखी मन से उसने उत्तर दिया—

"तुम सच कहते हो, राजेन्द्र ! किन्तु मैं विवश हूँ ।"

"विवश, विवश···विवश क्यों ? मैं यह शब्द बड़ी देर से सुन रहा हूँ ।"

"राजेन्द्र ! मेरा आज तक विचार था कि स्त्री पुरुष को एक कर देने वाली सबसे बड़ी शक्ति प्रेम है ; कोमल भावनायें हैं···किन्तु, आज मैं समझ गया यह सब ढोंग है, मिथ्या है···यह मन का सौदा नहीं तन का लेन-देन है···यौवन और शारीरिक सौन्दर्य का आकर्षण है···वासना-पूर्ति है···भावनायें उभरती हैं, उनकी पूर्ति होती है और फिर शीत पड़ जाती हैं···यही चक्र फिर चलता है···कोई प्रेम नहीं, कोई चिरस्थायी बंधन नहीं ।"

"यह तो प्रकृति का नियम है···हर भावना की तृप्ति आवश्यक है···इसी में शान्ति का रहस्य है···इसी के आधार पर जीवन चलता है···यदि इच्छाओं की पूर्ति न होती रहे तो मानव उन्नति भी न कर सके···कामनाओं और अभिलाषाओं के बने रहने का नाम ही जीवन है ···यह नहीं तो कुछ नहीं···जीवन से लगाव ही तो प्रेम है ।"

"परन्तु ; उसका जीवन भी क्या जिसमें कामनायें हों किन्तु, अपूर्ण ···पंख हों पर उड़ने की शक्ति न हो···उसके चारों ओर जीवन का सुख हो और उसके पाँव जकड़े हों, हाथ जकड़े हों···तुम ही कहो मैं क्या करूँ ?"

राजेन्द्र ने अनुभव किया मानो उसके मित्र के जीवन के सब रहस्य

उभर कर उसके होंटों तक आ गये थे। वह कुछ कहना चाहता था, किन्तु उसकी ज़बान सूख गई थी और शब्द गले में ही दबकर रह गये। उसके रहस्य आँसू बनकर उसकी आँखों में चमके और ढलक गये। वह इससे अधिक और कह भी क्या सकता था ?

राजेन्द्र ने उसके कंधे पर हाथ रखा और सहानुभूति से उसकी ओर देखते बोला, "क्या मुझसे मन की बात न कहोगे ?"

"किस ज़बान से कहूँ ?"

"जीवन के कई ऐसे भेद भी हैं जो पत्नियों से छिपाये जाते हैं पर मित्रों से नहीं···यदि मित्र नहीं तो शत्रु समझकर ही कह डालो।"

"सुन सकोगे ?"

"मित्र का दुख न सुन सकूँगा···यह कैसे सम्भव हो सकता है ?"

"तो एक वचन देना होगा। मुझे मँझधार में छोड़कर न जाना।"

राजेन्द्र ने उसका हाथ पकड़ लिया और उसके और समीप हो बैठा।

७

रात मौन थी । वायु का नाम तक न था । दूर मेंढकों के टर्राने की
ध्वनि सुनाई दे रही थी । राजेन्द्र और वासुदेव झील के किनारे लेटे
आकाश की नीलाहट को निहार रहे थे, जिस पर धीरे-धीरे तारों का जाल
फैलता जा रहा था । दोनों चुपचाप किसी गहरी सोच में डूबे हुए थे ।

मित्र के मन का भेद जानकर राजेन्द्र को यूँ अनुभव हो रहा था
मानो किसी ने उसके शरीर को सुइयों से छेद डाला हो और उसमें हिलने
की शक्ति भी न रही हो ।

क्या यह सच है ?

क्या वास्तविकता कल्पना से इतनी भयानक थी ?

क्या आज तक वह इस ज्वाला में अकेला ही जलता रहा है ?

क्या जीवन में ऐसे भेद भी हैं जो पति अपनी पत्नी से नहीं कह
सकता ?

ऐसे कितने ही प्रश्न उसके मस्तिष्क में उठे और चक्कर लगाने लगे ।
उसकी साँस घुटी जा रही थी । उसने कठिनता से गर्दन मोड़कर वासु-
देव को देखा । वह झील के जल की भाँति मौन और शीत, आकाश की
ओर पथराई हुई दृष्टि से देख रहा था ।
अचानक एक आवाज़ हुई । दोनों के विचार की कड़ी टूट गई और

वह एक साथ उठ बैठे। सामने हाथ में टॉर्च लिये माधुरी खड़ी उन्हें पुकार रही थी।

दोनों बिना बात किये सिर झुकाये घर की ओर चल पड़े। माधुरी पीछे और वह दोनों आगे-आगे···कहीं उसके प्रेम का रहस्य तो नहीं खुल गया ? कहीं इसी बात पर दोनों में झगड़ा तो नहीं हुआ ? वह यह सोचती हुई मन ही मन डरती आ रही थी।

खाना खाते समय भी तीनों चुप थे। किसी ने कोई बात न की, कोई हँसा नहीं, कोई वाद-विवाद नहीं हुआ, बस चुपचाप खाते रहे···यूँ अनुभव हो रहा था मानो तीनों एक दूसरे से डर रहे हों। खाना विष बनकर उनके गले से नीचे उतर रहा था।

राजेन्द्र खाने के तुरन्त बाद अपने कमरे में चला आया। माधुरी का हृदय धड़क रहा था। उसे अकेले में अपने पति से भय लग रहा था। वह सोच रही थी कि वह अपने कमरे में चला जाए तो अच्छा हो, किन्तु ऐसा न हुआ। वह एक पत्रिका लेकर उसके पास ही आराम कुर्सी पर टाँगें लम्बी करके बैठ गया। थोड़ी देर माधुरी एक मानसिक दुविधा में बैठी रही और फिर धीरे से उठकर दूसरे कमरे में जाने लगी।

अचानक वासुदेव ने पुकारा, "माधुरी !"

अपना नाम सुनकर वह काँप गई और विस्मय से अपने पति को देखने लगी। वासुदेव ने उसे आश्चर्य में देखकर धीमे स्वर में पूछा, "क्या बात है ?"

"जी !" वह झेंप गई और घबराहट दूर करने का प्रयत्न करने लगी।

"कुशल तो है ? आज कुछ उदास दीख रही हो।"

"नहीं तो···आप चुप थे···मैं तो···"

"राजी को दूध पहुँच गया ?"

"गंगा से कह दिया था···"

"स्वयं देख लिया करो···वह अतिथि नहीं, मेरा बड़ा प्रिय मित्र है।"

वह चुप रही।

क्षण भर रुककर वासुदेव फिर बोला, "कहीं वह भूल न जाये, ज़रा देख लेना।"

यह कहकर वह फिर पत्रिका पढ़ने में लग गया। वह उठी और बाहर चली गई।

गंगा दूध का गिलास लिए राजेन्द्र के कमरे की ओर जा रही थी। माधुरी ने उसके हाथ से गिलास ले लिया और स्वयं उधर चली। वह बड़ी देर से उससे अकेले में मिलने का यत्न कर रही थी, किन्तु अवसर ही न मिल रहा था।

कमरे में हल्का-हल्का प्रकाश था और वह पलंग पर लेटा छत की ओर देख रहा था। उसने माधुरी को आते हुए नहीं देखा। माधुरी ने पहले तो उसे अपने आने की सूचना देनी चाही, परन्तु फिर कुछ सोच-कर रुक गई। मेज पर दूध का गिलास रखने लगी तो मेज को हल्की सी ठोकर लगी।

"कौन ?" वह आहट सुनकर चौंक उठा।

"मैं···माधुरी।"

"माधुरी ! तुम यहाँ कैसे ?"

"आपके लिए दूध लाई थी।"

"गंगा नहीं थी क्या ? आज मुझे दूध नहीं पीना।"

"क्यों ? मेरे हाथ लग गये इसलिये···?"

"नहीं, माधुरी···आज मन नहीं चाहता।"

"वही तो मैं पूछ रही हूँ···यह आपको एकाएक हो क्या गया है ?"

"कुछ नहीं···यूँही मन उदास हो गया है।"

"क्यों ?"

"कुछ विशेष बात नहीं···"

"आप मुझसे कुछ छिपा रहे हैं।"

"मन का भ्रम···एक अकारण सा भय···।"

"क्या ?" वह राजेन्द्र के बिल्कुल समीप आ गई और धड़कते हुए हृदय से उसकी बात सुनने लगी।

"सोचता हूँ कहीं तुम्हारा प्रेम धोखा न हो···"

राजेन्द्र की बात उसके मन पर नश्तर के समान लगी और वह तेजी से दूर हट गई। ऐसा करते हुए मेज को ठोकर लगी और दूध का गिलास उलट गया।

उसने एक दृष्टि गिरे हुए दूध पर और दूसरी राजेन्द्र पर डाली और झट बाहर निकल गई। राजेन्द्र के मुख पर एक छिपी मुस्कान थी। अभी उसने बाहर पैर रखा ही था कि लैम्प की बत्ती बुझ गई और कमरे में अंधेरा छा गया।

रात बढ़ती जा रही थी। खिड़की खुली थी और बाहर हवा के झोंके एक मन्द सी मधुर जलतरंग बजा रहे थे।

राजेन्द्र की आँखों में नींद न थी। अंधेरे में लेटे उसके मस्तिष्क के छाया-पट पर स्वयं अतीत के चित्र उतरने लगे। उसकी आँखों के सामने वह दृश्य फिर गया जब वह और वासुदेव सैनिक कालिज में इकट्ठे शिक्षार्थी थे। दोनों बड़े गूढ़ मित्र थे। शिक्षा समाप्त होने पर दोनों को अलग-अलग यूनिटों में बदल दिया गया। वह मद्रास में चला गया और वासुदेव को ब्रह्मा की सीमा पर जाना पड़ा।

जहाँ इस भयंकर युद्ध ने संसार भर में हाहाकार मचा दी वहाँ वासुदेव भी इसके प्रभाव से न बच सका। राजेन्द्र को उसका रहस्य आज ही ज्ञात हुआ। अभी तक उसके कानों में अपने मित्र के दुःख-भरे शब्द गूँज रहे थे। उसने अपनी पूरी आत्मकथा उसे सुना दी थी।

जापानियों से लड़ते हुए उसकी कम्पनी शत्रु के घेरे में आ गई और

वह बन्दी बना लिये गये । उसे दस और साथियों के साथ पहाड़ में खोदकर बनाये गये एक ऐसे कमरे में कैद कर दिया गया जिसके बाहर लोहे की मोटी सीखों का छोटा सा किवाड़ था । एक ओर छत से मिला हुआ एक झरोखे का स्थान था जो लोहे की मोटी जाली से ढका हुआ था जिससे थोड़ा सा उजाला उन तक पहुँचता । केवल इसी उजाले से वह दिन-रात का अनुमान लगा सकते थे । खाना और पानी उन्हें नाम मात्र को ही दिया जाता था । यहीं वह जीवन की अन्तिम साँसे गिन रहे थे ।

एक रात उन्होंने साहस किया और मिलकर उस दीवार को खोदने लगे जिसमें झरोखा था । भाग्य ने उनका साथ दिया और दो रातों में वह उस झरोखे में इतना स्थान खोदने में सफल हो गये जिसमें से रेंगकर वह बाहर निकल सकें ।

तीसरी रात बाहर निकलने की योजना बनी । वासुदेव का पाँचवाँ नम्बर था । उससे पहले उसके चार साथी बाहर निकलकर झाड़ियों में छिप गये थे । जब सन्नाटा छा गया और वह निश्चिन्त हो गये कि वह लोग सुरक्षित हैं तो उसने धीरे से गर्दन बाहर निकाली और चारों ओर दृष्टि दौड़ाई । सर्वत्र मौन था । दूर दो सन्तरी पहरा दे रहे थे । वासुदेव ने शरीर को समेटकर ऊपर उठाया, नीचे वाले साथियों ने सहारा दिया और वह रेंगता हुआ बाहर आ गया । ज़रा सी आहट हुई तो उसने अपने आप को झाड़ियों में छिपा लिया और धरती पर लेट गया ।

सन्तरी आपस में मुड़कर बातें करने लगे तो उसने धीरे-धीरे रेंग कर बढ़ना आरम्भ किया । कुछ आगे चलकर उठ खड़ा हुआ और दौड़ने लगा । दुर्भाग्य से उसका पाँव फिसला और वह गिर पड़ा । सन्तरियों ने झट से ललकारा । एक ने हवा में गोली छोड़ी और सर्च-लाइट घुमाकर देखा ।

सर्च-लाइट की रौशनी ज्यों-ज्यों उसके समीप आ रही थी, उसकी साँस घुटी जा रही थी। जीवन मृत्यु की सीमा पर दिखाई दे रहा था। बच निकलने का कोई मार्ग न था, करे तो क्या करे? रौशनी उसके आगे होकर मुड़ गई। उसने साहस बटोरा और पूरे बल से भागा। सर्च-लाइट मुड़कर उस पर आ पड़ी और इसके साथ ही गोलियों की एक बौछार उसके आस-पास होने लगी। वह धरती पर गिर गया।

गोलियों की बौछार समाप्त हुई तो घायल वासुदेव ने स्वयं को अँधेरी झाड़ियों में फेंक दिया। भाग्य से उसके दूसरे साथी भी वहीं छिपे बैठे थे। इससे पहले कि सन्तरी उस स्थान पर पहुँचते, उसके साथी घायल वासुदेव को लेकर नदी में उतर गये और रात के अँधेरे में तैरते हुए उसे पार कर गये।

वासुदेव के प्राण तो बच गये किन्तु, वह अति घायल हुआ था। एक गोली उसकी जाँघ में घुस गई थी। कैम्प में तत्कालीन चिकित्सा दी गई और शीघ्र आॅपरेशन के लिए पीछे भिजवा दिया गया। गोली निकल गई और आॅपरेशन सफल रहा। घाव भरने तक दो महीने उसे हस्पताल में ही रहना पड़ा।

जब उसका हस्पताल से जाने का दिन आया तो डाक्टर ने उससे हाथ मिलाते हुए कहा—

"वासुदेव! तुम बड़े भाग्यशाली हो।"

"सब आपकी कृपा है डाक्टर! वरन् मुझे तो बचने की कोई आशा न थी।"

"ऐसा मत कहो वासुदेव! मैंने तो अपना कर्त्तव्य ही पालन किया है...बचाने वाला तो भगवान् ही है। अच्छा, अब तुम यहाँ से जा रहे हो तो मैं तुमसे तुम्हारे जीवन सम्बन्धी कुछ कहना चाहता हूँ।"

"क्या?"

"तुम एक ज़िम्मेवार मिलिट्री अफ़सर हो और मैं तुम्हें अँधेरे में

नहीं रखना चाहता।"

"मैं समझा नहीं, डाक्टर !"

"तुम्हें जीवन तो अवश्य मिल गया है, किन्तु खेद है कि मुझे तुम्हारी कुछ खुशियाँ छीननी पड़ीं।"

"डाक्टर···!"

"हाँ, वासुदेव ! तुम्हारे जीवन के लिए मुझे विवशतः ऐसा करना पड़ा। गोली जाँघ में बहुत गहरी चली गई थी।"

"तो···?"

"ऑपरेश्न करते समय मुझे तुम्हारी कुछ ऐसी नसें काटनी पड़ीं जो फिर नहीं मिल सकतीं।"

वासुदेव आश्चर्यचकित डाक्टर की ओर देखने लगा। उसकी समझ में कुछ न आ रहा था कि डाक्टर क्या कहना चाहता था। किन्तु जब उसने मुँह मोड़कर धीमे स्वर में उससे कहा, "वासुदेव ! अब तुम नपुंसक हो गये हो···और स्त्री-सम्भोग के योग्य नहीं रहे," तो उसके मस्तिष्क पर एक हथौड़े की सी चोट लगी। उसका रोम-रोम काँप उठा ···उसे यूँ लगा मानो किसी ने उसकी युवा-आकांक्षाओं का गला घोंट दिया हो···कोई बर्फ का तोदा उस पर आ गिरा हो और उसका शरीर सुन्न हो गया हो। वह सिर निहोड़ाये चुपचाप हस्पताल से बाहर निकल आया।

राजेन्द्र को उसका दुख और विवशता जानकर एक आघात सा लगा। उसे स्वयं से घृणा होने लगी। माधुरी के विचार से भी उसका सीना जलने लगता···उसने अपने मित्र की पीठ में खंजर घोंपा था··· कितना गिरा हुआ कार्य था···उसे अपने मानव होने पर भी शंका होने लगी।

वासुदेव में कितया धैर्य था···सचमुच वह देवता था···अपनी पत्नी के विरुद्ध उसने एक शब्द मुँह से न निकाला···और माधुरी···? वह

उसे पत्थर समझती है···कितनी शीघ्र वह अपना प्रेम और कर्त्तव्य सब कुछ भूल गई···उसे वासुदेव के यह कहे हुए शब्द स्मरण हो आये, "मैं अब जान पाया कि प्रेम कुछ नहीं···इसका आधार कामुकता पर है··· और वह यदि न हो तो प्रेम एक धोखा है, भुलावा है···।"

रात भर वह इन्हीं विचारों में उलझा रहा और सवेरा होने की प्रतीक्षा करता रहा। उसने सोचा, क्यों न वह यह स्थान छोड़कर चला जाये और आजीवन उसे अपना मुँह न दिखाये।

उसने रात ही को भाग जाने की सोची, किन्तु सहसा उसे फिर वासुदेव के दुख का विचार आया और उसके पाँव रुक गये।

अबकी वह उसे धोखा न देना चाहता था।

८

"यह क्या ?"

"वासुदेव ! अब आज्ञा चाहिये ।"

"पागल तो नहीं हो गये···तुम नहीं जा सकते ।" वासुदेव ने उसके हाथ से लेकर कपड़े अलमारी में रख दिये और फिर बोला, "याद है, तुमने एक वचन दिया था ?"

"क्या ?"

"मुझे मँझधार में छोड़कर न जाओगे ।"

"मैं तो स्वयं डूब रहा हूँ, तुम्हारी क्या सहायता करूँगा ?"

"कभी तिनके का सहारा भी बहुत बड़ा सहारा बन जाता है ।"

"तुम तो जानते हो···अब मेरा यहाँ रहना तुम दोनों के लिए अच्छा नहीं ।"

"ऐसा तो तुम सोचते हो राजी ! मैं नहीं । मन की बात कह दूँ ?"

"क्या ?"

"तुम्हारी दो दिन की संगत में माधुरी का जीवन बदल गया······ तुम दोनों के मन में प्रेम का नव-संचार हुआ है···इस बस्ती को फिर से उजाड़ने में क्या लाभ···?"

"यह तुम कह रहे हो ?"

"हाँ, मैं ही कह रहा हूँ······मेरा और माधुरी का यही सम्बन्ध है

कि वह दुनिया वालों के सामने मेरी पत्नी है···किन्तु, मैं उसके जीवन को यूँ नीरस बनाये रखूँ, यह करना मेरे लिये सम्भव नहीं···अब मेरी यही इच्छा है कि तुम दोनों सुखी रहो···तुम दोनों युवा हो, तुम्हारा पहले का प्रेम है···भगवान् इस प्रेम को बनाये रखे, इसी में मेरी प्रसन्नता है।"

"परन्तु, वासुदेव ! यह कितनी विचित्र बात है···इस से तुमको जलन न होगी ?"

"जलन ! मुझे तो अब जीवन भर ही जलन रहेगी···परन्तु उस निर्दोष को भी अपनी ज्वाला में क्यों धकेलूँ !"

"तो क्या स्वयं उसे यह पाप करने को कहोगे···स्वयं···अपनी आंखों के सामने···?"

"इस पाप का भार तो मुझ पर है···उस पर नहीं।"

"नहीं-नहीं···तुम उसके साथ मुझसे भी यह पाप कराओ···यह सम्भव नहीं।"

"तो राजेन्द्र ! क्या यह अच्छा होगा कि वह मुझे छोड़कर एक दिन किसी और के साथ भाग जाये और मैं किसी को मुँह न दिखा सकूँ···वह दूसरों के सामने मेरा रहस्य खोल दे और लोग मेरा उपहास उड़ायें···और मैं तंग आकर आत्महत्या कर लूँ···?"

राजेन्द्र यह सुनकर सटपटा गया। उससे कोई उत्तर न बन पड़ा और वह मुट्ठियाँ भींचता हुआ खिड़की के पास जा खड़ा हुआ। अभी पौ ही फटी थी। उसने दूर क्षितिज में झाँका, उसे किसी प्रकार चैन न था। वासुदेव उसके पीछे आ खड़ा हुआ और धीरे से बोला—

'किसी दूसरे के पास जाने से तो अच्छा होगा कि वह तुम्हारी हो जाये···तुम्हारा यह उपकार मैं जीवन भर न भूलूँगा।"

"एक बार फिर सोच लो, वासुदेव !" वह मुड़ते हुए बोला।

"यह सब कुछ सोच-विचारकर ही कह रहा हूँ।"

"तो एक वचन देना होगा।"

"क्या?"

"तुम हमारे प्रेम में काँटा न बनोगे...और माधुरी पर कभी प्रगट न होने दोगे कि तुम उससे घृणा करते हो।"

"घृणा...! मैंने उससे सदा प्रेम किया है और प्रेम करता रहूँगा।"

"वह कहाँ है?" राजेन्द्र ने पूछा।

"सो रही है। तुम उसे जगा लाओ...मैं सैर के लिए घोड़ों का प्रबन्ध करता हूँ।"

"उसे तुम स्वयं ही जगाओ।"

"नहीं भाई! चले भी जाओ,"—वासुदेव ने मुस्कराते हुए कहा और बाहर चला गया।

राजेन्द्र ने उसकी मुस्कराहट में छिपी हुई पीड़ा का अनुमान लगाया। वह कैसा पति है जो अपनी पत्नी को दुराचार की खाई में धकेलकर अपने मन की शान्ति खोज रहा है? कहीं वह उसकी परीक्षा तो नहीं ले रहा? उसकी समझ में कुछ न आ रहा था कि वह क्या करे...इतनी बड़ी मानसिक समस्या उसके सामने उत्पन्न हो सकती है, यह उसने कभी न सोचा था।

अनमने मन से वह माधुरी के कमरे की ओर रवाना हुआ। बरामदे में रखे फूलों के गमलों से उसने गुलाब का एक फूल तोड़ा और मुट्ठी में रख लिया।

माधुरी अपने बिस्तर पर न थी। उसने चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर देखा। स्नान-गृह का द्वार खुला था जिससे प्रगट हो रहा था कि वह अभी-अभी भीतर गई है। वह पर्दे की ओट में खड़ा होकर उसके बाहर आने की प्रतीक्षा करने लगा।

थोड़ी ही देर में वह बाहर निकली और तौलिये से मुँह पोंछती हुई दर्पण के सामने केश सँवारने लगी। राजेन्द धीरे-धीरे दबे पाँव

उसके पीछे जा खड़ा हुआ और गुलाब के फूल को उसके जूड़े में टाँकने लगा। दर्पण में छाया सी देखकर माधुरी झट से मुड़ी और राजेन्द्र को देखकर उखड़े हुए साँस में बोली—

"ओह ! आप···इस समय ?"

फूल राजेन्द्र के हाथ से फ़र्श पर जा गिरा। माधुरी ने घबराहट में चारों ओर देखा और नीचे झुककर फूल उठाने लगी। उसी समय राजेन्द्र भी झुका। दोनों के हाथ टकराये और शरीर में एक सिहरन सी दौड़ गई। माधुरी का हाथ ढीला पड़ गया। राजेन्द्र ने फूल उठा लिया और मुस्कराकर उसकी ओर देखते हुए बोला—

"अनुमति हो तो इसे तुम्हारे बालों में टाँक दूँ।"

लज्जा से माधुरी के मुख पर घबराहट सी उत्पन्न हुई। राजेन्द्र समझ गया और नीचे संकेत करते हुए बोला—

"तुम्हारे पति महोदय तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"कहाँ ?"

"नीचे···ड्योढ़ी में···घोड़ों पर घूमने का विचार है।"

"मुझसे तो नहीं कहा।"

"किन्तु, मुझको तुम्हें ही लाने के लिये भेजा है।'

यह जानकर कि वासुदेव नीचे है, माधुरी ने सांत्वना की साँस ली और फिर से दर्पण में देखने लगी। राजेन्द्र ने बढ़कर फूल उसके जूड़े में टाँक दिया।

"कहिये, रात कैसे कटी ?" माधुरी ने होंटों को सिकोड़ते हुए धीमे स्वर में पूछा।

"जैसे-तैसे कट ही गई···हँसकर गुज़ारें या इसे रोकर गुज़ार दें।"

राजेन्द्र ने अन्तिम वाक्य बड़ा धीरे-धीरे रुक-रुककर बोला।

माधुरी मुस्करा दी और बोली, "और अब दिन कैसे कटेगा ?"

"वह भी तुम लोगों के संग कट जायेगा।"

"यदि मैं साथ न जा सकूँ तो···?"

"तो वासुदेव को अकेले ही जाना पड़ेगा।"

"और आप ?"

"मैं···मेरा क्या है···तुम्हारे बिना तो मैं न जा सकूँगा।"

यह उत्तर सुनकर माधुरी चुप हो गई और दर्पण में अपने आपको देखती रही। वह भी मौन खड़ा उसे देखता रहा। नीचे से घोड़ों के हिन-हिनाने की ध्वनि आई तो दोनों चौंककर एक दूसरे को तकने लगे। राजेन्द्र ने समीप आकर पूछा—

"क्या विचार है ?"

"आप चलिये···मैं कपड़े पहनकर अभी आई।"

कुछ देर बाद तीनों घोड़ों पर सवार झील के किनारे-किनारे बढ़े जा रहे थे। अभी सूर्य न निकला था। हवा के शीतल झोंकों ने तीनों के मस्तिष्क से एक बोझ सा हटा दिया था। घोड़ों की डोर थामे वह आस-पास के दृश्य में खोये चले जा रहे थे···अपनी-अपनी धुन में, अपनी-अपनी कल्पना में, बिना बातचीत किये।

बस्ती को वह बहुत पीछे छोड़ आये थे। सहसा यह देखकर कि वासुदेव उनसे बहुत आगे निकल चुका है, माधुरी आश्चर्य में पड़ गई। वह दोनों अपने विचारों में इतने गुमसुम थे कि उन्हें पता भी न चला वह कब उनको छोड़कर आगे चला गया। उसने दृष्टि फिराकर राजेन्द्र की ओर देखा और हवा से लहराती हुई लटों को सँभालते हुए बोली—

"आप नहीं गये ?"

"कहाँ ?"

"उनके साथ···घोड़ा दौड़ाने ?"

"तुम्हें अकेला छोड़कर···यह कैसे हो सकता है ?"

"आज न जाने क्यों···अकेले ही रहने को मन चाहता है।"

"तो ठीक है···,"—राजेन्द्र ने कहा और घोड़े को एड़ लगा दी।

माधुरी ने ऊँचे स्वर में पुकारकर उसे रोकना चाहा, किन्तु क्षण भर में ही वह दूर पहुँच चुका था।

थोड़ी ही देर में घोड़ा दौड़ाते हुए वह वासुदेव से जा मिला और उसके घोड़े से घोड़ा मिलाते बोला, "तुम इतनी दूर कहाँ चले आये?"

"एक हिरन देखा था···न जाने कहाँ चला गया?" वासुदेव ने बंदूक कंधे पर लटकाते हुए उत्तर दिया और फिर उसे अकेला देखकर पूछने लगा, "माधुरी कहाँ है?"

"पीछे आ रही होगी।"

"अच्छा होता जो तुम उसके साथ रहते···अकेले में डर न जाये।"

"डरने की क्या बात है?" राजेन्द्र ने असावधानी से पूछा।

"स्त्री ही तो है···देखो! मैं अपने शिकार की खोज में जंगल में जाता हूँ, तुम यहीं उसके आने की प्रतीक्षा करो। लौटते में मिलेंगे।" वासुदेव यह कहकर क्षण भर में घोड़े को एड़ लगाकर ओझल हो गया। राजेन्द्र ने घोड़े का मुँह पीछे की ओर मोड़ लिया और माधुरी को देखने लगा।

थोड़ी देर में वह भी घोड़ा दौड़ाती, हाँफती हुई आ पहुँची और बोली, "यह क्या? मुझे अकेले छोड़ आए?"

"तुम्हीं तो अकेलापन चाहती थीं।"

"बात तो पूरी सुन ली होती।"

"क्या?"

"अकेलापन चाहती थी, किन्तु आपके साथ।"

"तो लो, मैं आ गया।"

"यह आज आपको हुआ क्या है?"

"क्या?"

"यह अनूठापन···कुछ बने-बने दीख रहे हैं?"

"नहीं तो···बड़े दिनों पश्चात् घोड़े की सवारी की है, इसीलिये।"

"मैं कौन सी घुड़सवार हूँ···,"—उसने कहा और फिर क्षण भर

रुककर पूछा, "वह कहाँ चले गये ?"

"सामने जंगल में···हिरन का शिकार करने।" राजेन्द्र ने दूर जंगल की ओर संकेत करते हुए उत्तर दिया।

"हूँ—" वह नाक चढ़ाते बोली, "वास्तविकता को छोड़कर कल्पना के स्वर्ण-मृग के पीछे भागते फिरते हैं।"

"चलो, इसी बहाने हमारा मिलन तो हो जाता है।"

"ऐसा मिलन भी क्या जो मन को एक धड़का सा लगा रहे···, हर आहट में एक घबराहट छिपी हो···।"

"ठीक है माधुरी ! किन्तु, बिल्कुल आजाद जीवन में भी कोई आनन्द नहीं···हल्का-हल्का डर ही तो प्रसन्नता को बढ़ाता है।"

"छोड़िये इस वाद-विवाद को···मैं तो थककर चूर हो गई,"—उसने घोड़े को बिल्कुल पास लाते हुए कहा।

"अभी तो आरम्भ ही है और तुम थक गईं···आगे चलकर क्या होगा ?"

"आरम्भ तो जीवन की दौड़ का है···मैं घोड़ा दौड़ाने की बात कर रही हूँ।"

"ओह ! मैं समझा तुम प्रेम से थक गई हो···अच्छा, प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।"

"किसकी ?"

"तुम्हारे पतिदेव की।" राजेन्द्र ने 'पति' के शब्द को चबाकर बोलते हुए कहा। उसे यूँ अनुभव हुआ कि यह शब्द माधुरी को काँटे के समान लगा हो। कुछ देर दोनों चुप रहे और फिर राजेन्द्र बोला—

"तुम्हारे शिकारी-पति पर बड़ा तरस आता है।"

"क्यों ?"

"स्वयं शिकार के पीछे चला गया है और अपना 'धन' यहाँ छोड़ गया है।"

"आप पर भरोसा जो है।"

"हाँ ! जानती हो, क्या आदेश दे गया है ?"

"क्या ?"

"मेरी माधुरी अकेले में डर न जाये···उसके साथ रहना।"

"इसीलिए आप मुझे अकेला छोड़कर भाग जाना चाहते थे।"

"चाहता तो नहीं···किन्तु होगा ऐसा ही।"

"तो आप मुझे छोड़ जायेंगे ?"

"माधुरी ! न जाने क्यों, कुछ ऐसे ही विचार आते हैं···"

"क्या ?"

"कि मैं कोई महा पाप कर रहा हूँ···जो मित्र मुझ पर इतना विश्वास करता है उसी का विश्वासघात कर रहा हूँ··· उसी के यहाँ चोरी कर रहा हूँ।"

माधुरी ने उसकी बात सुनी और तीव्र दृष्टि से उसे देखा। वह आगे कुछ और कहना चाहता था, किन्तु माधुरी घोड़े को पगडंडी पर डालकर आगे बढ़ गई। कुछ देर चुपचाप खड़ा वह उसे जाते हुए देखता रहा और जब वह पेड़ों में ओझल हो गई, तो धीमी चाल से उसने भी घोड़ा पगडंडी पर डाल दिया।

वातावरण में एक चीख़ गूँजी। घोड़े पर बैठा राजेन्द्र सिर से पाँव तक काँप गया और तेज़ी से उसी ओर बढ़ा जिधर माधुरी गई थी। उसकी चीख़ अभी तक उसके कानों में गूँज रही थी। न जाने अचानक उसे क्या हो गया था।

कुछ दूर उसने माधुरी के घोड़े को खड़े हुए देखा। माधुरी नीचे धरती पर बेसुध पड़ी थी। सोच ही रहा था कि उसके गिरने का क्या कारण हो सकता है कि उसकी दृष्टि थोड़ी दूर पर एक पेड़ के तने पर पड़ी, जहाँ एक लम्बा साँप रेंगता हुआ ऊपर चढ़ रहा था।

राजेन्द्र शीघ्रता से नीचे उतरा और माधुरी का सिर हाथों में थाम-

उ

कर उसे पुकारने लगा। जब पुकारने पर वह सुध में न आई तो उसने उसे बाँहों में उठा लिया। इस विचार से कि कहीं वह साँप के काटे से बेसुध न हो गई हो, उसने उसे अपने आगे घोड़े पर डाला और सरपट घोड़ा दौड़ाता घर की ओर मुड़ा। माधुरी का घोड़ा भी उसके पीछे-पीछे भागता चला आया।

घर पहुँचने पर भी वह सुध में न आई। राजेन्द्र ने उसे गंगा की सहायता से नीचे उतारा और उसके कमरे में लाकर पलंग पर लिटा दिया। गंगा को उसने पानी लाने के लिये भेजा और स्वयं उसकी बाँहों को टटोलकर साँप काटे का निशान देखने लगा। साड़ी का घेरा खिसका-कर उसने पाँव और पिंडलियों को भी छूकर ध्यानपूर्वक देखा, किन्तु उसे साँप काटे का कोई चिन्ह दिखाई न दिया। उसके शरीर को निहारते हुए उसे कुछ संकोच हुआ। उसके सिर को दोनों हाथों से झँझोड़ते हुए अपना मुँह उसके कान के पास ले जाते हुए उसने फिर पुकारा, "माधुरी ···माधुरी !"

एकाएक माधुरी के हाथ उठे और उसके गले में पड़ गये। उसकी आँखें अभी तक बन्द थीं। राजेन्द्र घबरा सा गया और हड़बडाकर उसकी ओर देखने लगा। माधुरी ने बाँहों की जकड़ और कड़ी कर ली और आँखे खोलकर मुस्कराने लगी।

"तो क्या तुम···?"

"बेसुध थी···आपके शरीर के स्पर्श से सुध में आ गई।"

"झूठ···तुम मुझे बनाती रहीं।"

"यदि ऐसा न करती तो आपका हृदय कैसे पिघलता···और इतनी दूर से मुझे उठाकर कौन लाता ?"

"तो तुम मेरी परीक्षा ले रही थीं ?"

"प्रेम में कुछ ऐसी ही परीक्षाएँ आती रहती हैं।"

"मैं तो समझा था कि तुम्हें साँप···"

"काट जाता तो अच्छा था···यह हर दिन का झगड़ा तो मिट जाता।"

"कैसा झगड़ा ?"

"आपकी चिन्ता···उनका क्रोध और अपने मन की पीड़ा···न जाने इसका अन्त क्या होगा ?"

"हाँ, न जाने···"

शब्द अभी राजेन्द्र के मुँह में ही थे कि द्वार पर आहट हुई और वह झट अलग हो गये। माधुरी फिर आँखें मूँदकर बेसुध हो गई। राजेन्द्र ने मुड़कर देखा, गंगा पानी का गिलास लिये भीतर आ रही थी।

राजेन्द्र ने गंगा के हाथ से गिलास ले लिया और माधुरी के मुख पर पानी के छींटे मारने लगा। माधुरी ने धीरे-धीरे आँखें खोल दीं। और गंगा की ओर यूँ देखने लगी, जैसे उसे पहचानने का प्रयत्न कर रही हो। राजेन्द्र ने पानी का गिलास गंगा को लौटा दिया और गर्म चाय का प्याला लाने को कहा।

गंगा जब बाहर चली गई तो माधुरी तकिये का सहारा लेकर बैठ गई। पानी के छींटों से उसके मुख पर ताजगी आ गई थी और उसके मुस्कराते हुए होंट तो यूँ लग रहे थे मानो ओस में नहाकर कोई अध-खिली कली खुल रही हो। माधुरी ने उसे तौलिया देने का संकेत किया। उसी समय राजेन्द्र की दृष्टि खिड़की से नीचे ड्योढ़ी में पड़ी। वासुदेव भी लौट आया था और घोड़ा बाँध रहा था। क्षण भर के लिये वह भौंचक सा स्थिर उसे खड़ा देखता रहा। माधुरी ने पूछा—

"क्या है ?"

"कुछ नहीं···देख रहा था अभी वासुदेव नहीं लौटा।"

"किसी हिरन का पीछा कर रहे होंगे।"

राजेन्द्र उसके पास बैठ गया और स्वयं तौलिये से उसका मुख पोंछने लगा। माधुरी ने पलकें बन्द कर लीं और उसके स्पर्श का आनन्द उठाने

लगी।

राजेन्द्र के कान वासुदेव के पाँव की चाप पर लगे हुए थे। साँस रोककर वह काँपते हुए हाथों से उसके गाल पोंछ रहा था। उसी समय धीरे-धीरे पीछे से वासुदेव भीतर आया और द्वार पर लगे हुए पर्दे के पीछे छिप गया। राजेन्द्र ने उसे भीतर आते हुए देख लिया था, किन्तु माधुरी पर उसे प्रकट न होने दिया।

उसके मुख पर दृष्टि टिकाये तौलिये से वह उसका मुँह सुखा रहा था कि सहसा काँपकर रह गया। माधुरी ने उसकी कम्पन को अनुभव किया और झट उसकी कलाई थामते हुए पूछा—

"क्या हुआ ?"

"अनजाने में तुम्हारे माथे की बिंदिया पौंछ डाली।"

"तो क्या हुआ ?"

"यह तुम्हारे सुहाग का चिह्न था।"

"सुहाग ! तुम इसे सुहाग कहते हो ? मुझ से पूछो···निरन्तर तीन वर्षों से यह सुहाग भीगी रातों में अंगारों पर जलता है···चाँदनी में सिर पटककर तड़पता है, तारों की छाया में मन मसोसकर लोटता है··· ऐसे सुहाग का तो मिट जाना ही अच्छा है···राजी···! सच पूछो यह माँग अब भी खाली है···यह माथा इस चाह में है कि इस पर सुहाग का चिह्न हो···यह अंग-अंग एक सहारे का इच्छुक है···क्या तुम सहारा न दोगे···क्या तुम स्वयं अपने हाथों से यह बिंदिया न लगाओगे···यह माँग न भरोगे ?"

राजेन्द्र सुनता रहा और वह कहती रही···पागल सी होकर वह अपने आप को भूले जा रही थी। राजेन्द्र ने देखा पर्दा हिल रहा था। उसने माधुरी के मुँह पर हाथ रखकर उसका बोलना बंद कर दिया और उसे दोनों हाथों से पकड़कर ठीक प्रकार से बिठाते हुए बोला, "देखो ! गंगा चाय लाई है···दो घूंट पी लो···अभी ठीक हो जाओगी।"

गंगा को देखकर माधुरी ने शरीर को ढीला छोड़ दिया। राजेन्द्र गंगा को उसे चाय देने का संकेत करके बाहर चला गया। माधुरी विस्मय से उसे देखने लगी।

पर्दा अभी तक हिल रहा था। वासुदेव पीठ किये गोल कमरे की ओर जा रहा था। राजेन्द्र ने उसे मुड़ते हुए देख लिया था। कुछ क्षण तक वह बाहर निकलकर खड़ा सोचता रहा और फिर उसके पीछे-पीछे गोल कमरे की ओर चला गया। वह माधुरी के प्यार की झाँकी दिखाकर उसके मन की प्रतिक्रिया देखना चाहता था।

कमरे में आहट हुई और वासुदेव ने तेजी से मुड़कर देखा। चौखट का सहारा लिये राजेन्द्र उसकी ओर देख रहा था। वासुदेव के मुख पर हल्का सा दुख और क्रोध उत्पन्न हुआ और उसने मुँह फेरकर भरे हुए स्वर में रुकते-रुकते पूछा, "गंगा कह रही थी···माधुरी को साँप ने काट खाया है ?"

"उसे तो नहीं काट खाया···किन्तु तुम्हारे मन में अवश्य डंक लगा है।"

"राजी !" वह तमतमाकर चिल्लाया और मुड़कर उसे देखने लगा। राजेन्द्र शान्त खड़ा मुस्करा रहा था। मित्र को क्रोध में देखकर वह बोला—

"मैं न कहता था कि जो मुझसे माँगा है उसे देख न सकोगे···अब भी मुझे जाने दो और मुझे यह विचित्र नाटक खेलने पर विवश न करो।"

"नहीं राजी ! ऐसी बात नहीं···मन ही तो ठहरा, लाख सँभालने पर भी भर आता है—अब ऐसा न होगा।"

थोड़ी देर दोनों एक दूसरे को देखते रहे और फिर वासुदेव ने पूछा, "अब वह कैसी है ?"

"चिन्ता न करो···साँप डसना केवल एक बहाना था—"

"तो···?"

"प्रेम का नाटक···,"—राजेन्द्र ने धीरे से कहा और उसकी पीठ ठोंकते हुए अपने कमरे में चला गया। वासुदेव अवाक् मूर्ति बना वहीं खड़ा रहा।

६

आकाश घटाटोप हो रहा था। हवा बंद थी, पत्ता तक न हिलता था और सर्वत्र एक सन्नाटा था। राजेन्द्र की आँखों में नींद न थी। उसकी साँस घुटी जा रही थी और वह बेचैनी से रह-रहकर करवटें बदल रहा था।

काली भयानक रात किसी आने वाले तूफान की प्रतीक थी। उसकी आँखों के सामने वासुदेव का मुख फिर गया···वह कितना दुखी था··· वह पर्दे के पीछे छिपा अपनी पत्नी को दूसरे से प्यार करते देखता रहा और हिला नहीं···विष के घूँट पी गया···कितना धैर्य है उसमें···वह उसके स्थान पर होता तो अवश्य सामने आकर कुछ कर बैठता···वह अनोखा पति था, जो जान-बूझकर अपने आप को कुएँ में धकेल रहा था ···यह कैसी आत्महत्या है···उसी समय उसे वासुदेव के यह शब्द याद आये, 'राजी ! तुम्हारा मुझ पर यह बड़ा भारी उपकार होगा···मैं नहीं चाहता कि वह किसी और के साथ भाग जाये और लोग मेरी हँसी उड़ायें ···मेरा अपमान करें···इससे तो अच्छा होगा कि वह तुम्हारी हो रहे ···मुझे प्रसन्नता ही होगी।'···यह विचार आते ही वह तड़प गया··· आज वह बेबस था और इसीलिये अपनी पत्नी से डरता था···वरना जो व्यक्ति एक मस्त घोड़े को वश में ला सकता है, वह क्या पत्नी पर अधि-

कार नहीं पा सकता···परन्तु नहीं, यह कैसा विचार है···वह सच कहता है, प्रेम एक ढोंग है जिसका आधार केवल वासना पर है···वह उसकी वासना-पूर्ति नहीं कर सकता, वरना ऐसे पवित्र-हृदय व्यक्ति को माधुरी कभी धोखा न दे सकती। इन विचारों से उसे उलझन होने लगी। तकिये के नीचे से उसने सिग्रेट की डिबिया निकाली और सुलगाकर पीने लगा। उसने खिड़की का पर्दा हटा दिया।

एकाएक उसे यूँ लगा जैसे कोई द्वार पर खड़ा उसे भीतर धकेलने का प्रयत्न कर रहा हो। पहले तो उसने कोई ध्यान न दिया, किन्तु फिर जब किसी ने किवाड़ खटखटाया तो वह उठकर खड़ा हो गया। दबे स्वर में किसी ने उसका नाम लेकर पुकारा। यह माधुरी की आवाज थी जो उसे किवाड़ खोलने के लिये कह रही थी।

राजेन्द्र ने बत्ती जलानी चाही, किन्तु फिर कुछ सोचकर रुक गया। कुछ देर खड़ा सुनता रहा और फिर उसने चिटखनी खोल दी। किवाड़ खुला और माधुरी भीतर आई। इससे पूर्व कि राजेन्द्र उस पर कोई प्रश्न करता, उसने तेजी से मुड़ते हुए किवाड़ बन्द कर दिया। कमरे में फिर मौन सा छा गया और दोनों घबराये से एक दूसरे को देखने लगे।

"क्यों, कुशल तो हो ?" राजेन्द्र ने साश्चर्य पूछा।

"जी···यूँही चली आई।"

"यूँ ही चली आई ?" राजेन्द्र ने उसका उत्तर दोहराया।

"जी ! आप ही ने तो कहा था, प्रेम में कभी बड़े साहस से काम लेना पड़ता है।"

"किन्तु, इतनी अधीरता से नहीं।"

"अधीरता···? तड़-तड़पकर जल मरने को तुम धैर्य कहते हो···यही ना···?"

"उसका उत्तर सुनकर राजेन्द्र चुप रहा। उसने अँधेरे में उसकी आँखों में एक विशेष चमक देखी···गुलाबी रंग की चमक, जो मनो-

भावना के बहुत उभरने पर ही उत्पन्न होती है। उसने धीरे से पूछा—

"वासुदेव कहाँ है ?"

"सो रहा है···आनन्द की नींद।"

"ओह !" उखड़े हुए साँस में उसने कहा और माधुरी की अधखुली आँखों में झाँकते हुए उसकी भरी-भरी नर्म बाँहों को हाथों में सँभाला जो उसको अपनी लपेट में ले लेने के लिये व्याकुल हो रही थीं। वह असमंजस में था कि इस बढ़ते हुए तूफान को किस प्रकार रोके।

उसने अपने मन की दशा माधुरी पर प्रकट न होने दी और उसके शरीर को अपनी बाँहों में सँभालते हुए बोला, "बड़ी गर्मी है···किवाड़ खोल दूँ।"

"ऊँ हूँ।" माधुरी ने उस से अलग हटकर खिड़की भी बन्द कर दी। राजेन्द्र का मन भीतर ही काँप सा गया। वह किवाड़ के साथ लगकर खड़ा हो गया। उसका मन एक विचित्र दुविधा में था। बाढ़ सब बाँध तोड़ चुकी थी। उसे रोकना व्यर्थ था और उसमें डूब जाना निर्लज्जता थी। उसकी समझ में कुछ न आ रहा था कि वह क्या करे। माधुरी उसके पलंग पर लेट गई।

राजेन्द्र ने बाहर का किवाड़ खोलकर अँधेरे में झाँककर देखा। दूर दीवार से लगी उसे एक छाया सी चलती हुई दिखाई दी। उसका अनुमान ठीक ही था। वह वासुदेव था, जो माधुरी का पीछा करते हुए उसी ओर आ रहा था।

राजेन्द्र के मन को आघात सा लगा। उसने झट किवाड़ बन्द कर दिया और उसके साथ लगकर बाहर की आहट सुनने लगा। वह जानता था कि इतना कुछ कहने पर भी वासुदेव अवश्य उसका पीछा करेगा। पति चाहे कितना ही बेबस और निर्लज्ज अथवा उदार-हृदय क्यों न हो, अपनी आँखों से यह सहन करना सहल नहीं।

"कोई है क्या ?" माधुरी ने उसे किवाड़ से यूँ लगे देख, धड़ उठा-

कर पूछा ।

"कोई नहीं···केवल भ्रम ।" राजेन्द्र ने होंटों को दबाते हुए उत्तर दिया ।

वह सांत्वना की साँस लेकर फिर लेट गई । राजेन्द्र उसकी बेकली को ठीक अनुभव कर रहा था । वह धीरे-धीरे उसके पास गया और बिखरे हुए बालों को समेटने लगा । उसके कान बाहर ही लगे हुए थे । वह फिर खिड़की के पास जा खड़ा हुआ और वासुदेव के पैरों की आहट सुनने लगा, जो खिड़की के पास आकर बन्द हो गई थी । उसे विश्वास हो गया कि वह खिड़की के साथ लगकर उनकी बातें सुन रहा है । घबराहट में वह अपने हाथों की उँगलियाँ तोड़ने लगा ।

एकाएक उसके शरीर को एक धक्का सा लगा और वह काँप गया । जब सँभला तो उसने माधुरी को पीठ से लगी पाया । उसकी नर्म और भरी हुई बाँहें पीछे से उसके वक्ष पर पहुँच गई थीं । राजेन्द्र ने उसे हटाया नहीं और उसके हाथों को अपनी हथेलियों में लेकर खड़ा रहा । उसके नर्म और गर्म शरीर के स्पर्श से उसके अस्थिर मन को एक शान्ति सी मिली ।

"राजी !" माधुरी ने लम्बी साँस खींचते हुए धीरे से कहा ।

"हूँ !"

"यूँ खड़े क्या सोच रहे हो ?"

"सोच रहा हूँ कि नदी बढ़ी आ रही है, मैं प्यासा हूँ···बढ़ने का साहस नहीं···पाँव रुक-रुक जाते हैं ।"

"क्यों राजी ! जी भरकर प्यास मिटा लो···नदी तो स्वयं तुम्हारे चरणों में लोट रही है ।"

"किन्तु, इसके लिये तो झुकना पड़ेगा ।"

"इतना भी न झुकोगे क्या ? यह तरंगें तुम्हारे होंटों को चूमने के लिये व्याकुल हैं ।

"किन्तु, कब तक ?" वह एकाएक मुड़ा और उसकी गालों को अपने दोनों हाथों में लेकर बोला, "जब यह उतर जायेगी तो क्या होगा ? वही प्यास…वही विवशता…बल्कि तड़प और भी बढ़ जायेगी।"

माधुरी उसके उत्तर पर विचार करने लगी। राजेन्द्र ने लपककर खिड़की का पर्दा हटा दिया और तेजी से दोनों किवाड़ खोल दिये। एक परछाईं झट पीछे हटी और दीवार से लग गई। पत्तों की खड़खड़ाहट और किसी के भागकर चलने ने सब भेद खोल दिया। खिड़की के शीशे में से वह भली भाँति वासुदेव को देख रहा था। उसको अपने इतना समीप पाकर राजेन्द्र का भय कुछ घट गया था। माधुरी की ओर मुड़ते हुए वह बोला, "इधर आ जाओ…देखो हवा कितनी भली लगती है !"

"इसे बन्द ही रहने दीजिये।"

"क्यों ?"

"कहीं कोई आ न जाये।"

"तो क्या हुआ…एक दिन तो निडर बनना ही होगा।"

"आप सच कहते हैं…इस निश-दिन की तड़प…इस भय, इस प्यास…इन सब को समाप्त क्यों न कर डालें ?"

"कैसे ?" राजेन्द्र ने इस शब्द पर बल देते हुए पूछा और चोर-दृष्टि से शीशे में से वासुदेव को देखा।

"कहीं भाग चलें।" माधुरी ने राजेन्द्र की आँखों में आँखें डालकर कहा।

यह उत्तर सुनते ही राजेन्द्र ने फिर वासुदेव की ओर देखा। इसी समय अचानक आकाश पर चन्द्रमा निकल आया। दोनों की दृष्टि एक साथ ऊपर को उठी। घटाएँ फटकर अलग हो गई थीं और वातावरण निखर आया था। दोनों भली प्रकार एक दूसरे को देख रहे थे।

"यह चाँद कहाँ से निकल आया ?"

"यही तो प्रेम का साक्षी है।"

"तो राज़ी ! विलम्ब क्यों...आज रात ही..."

"इतना शीघ्र ?"

"अच्छा अवसर है...दोनों साथ हैं...चाँद अभी छिप जायेगा...अँधेरे में नाव झील में डाल देंगे।"

"परन्तु, जायेंगे कहाँ ?"

"कहीं भी...इतना बड़ा देश है।"

राजेन्द्र ने माधुरी की आँखों में देखा। आज वह प्रेम के लिये कड़े से कड़ा कष्ट झेलने को भी तैयार थी। उसने धीरे से पूछा—

"तो तुम अपनी बात पर दृढ़ हो ?...चलोगी ?"

"हाँ ! आपको कोई शंका है क्या ?"

"नहीं, तुम पर शंका तो नहीं...अपने आप पर से ही विश्वास उठ गया है। तुम सच कहती हो, इतना बड़ा देश है। कहीं भी जा छिपेंगे...किन्तु, धन भी तो चाहिये।"

"दो बरस तक आराम से रहने के लिये तो मेरे पास पर्याप्त है।"

"नहीं माधुरी ! यह क्या थोड़ा है कि मैं तुम्हें अपने मित्र से छीन-कर ले जाऊँ...उसके धन को चुराकर मैं नहीं भागना चाहता।

माधुरी चुप रही और हाथ बढ़ाकर खिड़की बन्द करने का प्रयत्न करने लगी। राजेन्द्र ने उसका हाथ पकड़कर रोक लिया।

"क्यों ?" उसने प्रश्नसूचक दृष्टि उठाते हुए पूछा।

"बन्द हवा में मेरी साँस घुटने लगती है।"

"डरती हूँ कोई आ न जाये ?"

"कौन आयेगा...वासुदेव के अतिरिक्त यहाँ और कोई है ही कौन ?"

"उन्हीं की बात तो कर रही थी।"

"उससे मत घबराओ...तुम ने स्वयं ही तो कहा था कि वह पत्थर की मूर्ति है...उसमें भावनायें नहीं...वह केवल पशुओं को वश में करना जानता है...मानव-हृदय की भाषा नहीं समझता।"

"नहीं राजी ! मेरा अभिप्राय यह न था···कहीं उन्होंने देख लिया तो सब बनता हुआ काम बिगड़ जायेगा।"

"नहीं, माधुरी ! यूँ कहो कि बिगड़ता हुआ काम सँवर जायेगा।"

"कैसे ?"

"मैं चाहता हूँ कि वह हमारी बातें सुन ले और हमें यूँ अँधेरे में प्रेम करता पकड़ ले।" उसने शीशे में वासुदेव की ओर ध्यानपूर्वक देखते हुए कहा।

"यह आप आज क्या कह रहे हैं ?"

"ठीक ही कह रहा हूँ···मैं यह नहीं चाहता कि मैं उसकी पीठ में छुरा मारूँ···मैं तो चाहता हूँ कि वह स्वयं अपनी आँखों अपने प्रेम का अन्त देख ले···और हम दोनों को अपने हाथों विवशता के बंधनों से मुक्त कर दे।"

"ऐसा कभी हुआ है ? उन्होंने देख लिया तो हम कहीं के भी न रहेंगे।"

"और जो यहाँ से भाग गये तो कहाँ के रहेंगे ?"

"मेरा अभिप्राय था कि मैं उनके सामने आने का कभी साहस न कर सकूँगी।"

"माधुरी !" टूटे हुए शब्दों में उसने कहा, "हमें प्रेम के लिये बड़ी से बड़ी आपत्ति का भी सामना करने के लिये तैयार रहना चाहिये···चाहे वह स्वयं वासुदेव ही क्यों न हो।"

शब्द अभी राजेन्द्र के मुँह पर ही थे कि वासुदेव अँधेरे से निकलकर खिड़की में आ गया और बिल्कुल उनके सामने आ खड़ा हुआ। उसके चेहरे पर दुख और माथे पर पसीना अन्तर के उस मानसिक संघर्ष के साक्षी थे जिस से उसे दो-चार होना पड़ा। माधुरी ने उसे देखा और चीख़कर अलग हट के द्वार की ओर भागी। राजेन्द्र ने लपककर उसे पकड़ना चाहा, किन्तु वह तेज़ी से बाहर निकल गई।

जाते-जाते उसने वासुदेव के यह शब्द भी सुन लिये जो वह राजेन्द्र से कह रहा था, 'तुम्हें अपने प्रेम के लिये मुझे बलपूर्वक मार्ग से हटाने का कष्ट न करना पड़ेगा···मैं तो स्वयं ही हट जाऊँगा।'

और वह कुछ न सुन सकी और सहमी हुई, पसीना-पसीना, धड़कते हुए मन से अपने कमरे में लौट आई। जाने दोनों में क्या झगड़ा हुआ, बात कहाँ तक पहुँची···किन्तु; उसने और कुछ भी न सुना और भीतर से कमरे का किवाड़ बन्द करके पलंग पर जा गिरी···एक भय सा उसके मस्तिष्क पर छा गया···उसकी आँखों में वासुदेव का वह रूप फिर गया, जब वह घोड़े को चाबुकों से मार रहा था।

कमरे में अँधेरा था। क्षण भर में क्या हो गया होगा, वह सोच भी न सकती थी। उसने अपना मुँह दोनों हाथों से ढक लिया और कँपकँपी को रोकने का व्यर्थ प्रयत्न करने लगी। उसे यूँ लग रहा था जैसे अभी वासुदेव किवाड़ को तोड़कर भीतर आ जायेगा।

अचानक किवाड़ पर धमाका हुआ। वासुदेव ही था। उसने ज़ोर से किवाड़ खटखटाया और फिर माधुरी का नाम लेकर पुकारा। उसमें न तो उठने का बल था और न इतना साहस ही कि उसके सामने आ सके। साँस रोके हाथों से मुख छिपाये वह चुपचाप पड़ी रही।

वासुदेव कोई उत्तर न पाकर चला गया। फिर से मौन छा गया। रात वैसी ही अँधेरी थी। कहीं से कोई आवाज़ न आ रही थी, किन्तु उसे चैन न था। उसके सोचने की शक्ति मर गई थी···वह पागल हो रही थी···मन ही मन वह प्रार्थना कर रही थी कि कभी सवेरा ही न हो और वह यूँही रात के अँधेरे में छिपी बैठी रहे।

१०

रात ज्यों की त्यों मौन थी। कभी-कभी धीमी सी हवा का कोई झौंका पेड़ों के पत्तों को कुछ गुदगुदा जाता और फिर वही मौन, वही सन्नाटा···रात आधी से अधिक बीत चुकी थी। बाहर वातावरण में हल्की सी शीत थी, किन्तु भीतर वासुदेव के घर में एक विचित्र आग सुलग रही थी···और इसके बुझने का कोई उपाय न था···तीन हृदय भस्म हो रहे थे।

राजेन्द्र ने कमरे की खिड़की खोलकर बाहर झाँका। घटाएँ एक बार छँटकर फिर एकत्र हो गई थीं। उसने असावधानी से गर्दन झटकी और हाथ में लिया हुआ पत्र लिफ़ाफ़े में बन्द कर दिया।

लिफ़ाफ़ा थामकर उसने दूसरे हाथ में अपना सूटकेस उठाया। रात के मौन में ही उसने इस स्थान को त्यागने का निर्णय कर लिया था। वासुदेव और माधुरी का आमना-सामना हो गया और यही वह चाहता था कि माधुरी जान जाये कि जिस पर्दे की ओट में वह यौवन का रास रचाना चाहती है, वासुदेव उससे अनभिज्ञ नहीं···उसकी कामना-पूर्ति के लिये उसने स्वयं अपने हाथों अपने मन को मार दिया है।

वह धीरे-धीरे पाँव उठाता कमरे से बाहर आ गया। आकाश पर घने बादलों के छाने से अँधेरा और गहरा हो चुका था। आहट को पाँव

में दबाये वह वासुदेव के कमरे तक पहुँचा। किवाड़ बन्द थे, किन्तु खुली हुई दरार से प्रतीत हो रहा था कि भीतर से चिटखनी नहीं लगी। वह क्षण-भर के लिये यहाँ रुका और दरार से लिफ़ाफ़ा भीतर फेंककर तेज़ी से बरामदा पार करके आँगन में चला आया। माधुरी का कमरा बन्द था और वह उससे मिलना भी न चाहता था। इसलिये चुपके से वह ड्योढ़ी से होता हुआ बाहर निकल आया।

झील के किनारे पहुँचकर उसे यूँ अनुभव हुआ मानो वह पिंजरे से निकल बाहर आया हो और आज बड़े समय पश्चात् उसने स्वतन्त्रता की साँस ली हो। वह आते हुए वासुदेव से न मिल सका, इस बात का उसे दुख था; किन्तु वह विवश था। अब इससे अधिक वह अपने मित्र के जीवन से खेलना न चाहता था।

उसने सूटकेस को नाव में रखा और एक छिछलती दृष्टि उस विशाल झील पर डाली। आज उसे जीवन बहुत तुच्छ दिखाई दे रहा था, बिल्कुल ऐसी नाव के समान जो बिना पतवारों के पानी के थपेड़ों के सहारे इधर से उधर हिचकोले खाती फिरती हो। अचानक उसे वासुदेव का ध्यान आया और वह उसकी बेबसी की कल्पना करके रो पड़ा। रात के मौन में यह आँसू किसी ने न देखे। आज वह नाटक करते हुए मंच से उठ-कर भाग आया था। उसके मन से एक भारी बोझ उतर चुका था।

ज्योंही उसने नाव का रस्सा खोलना आरम्भ किया, उसे किसी के भागने की आवाज़ आई। उसने गर्दन उठाकर देखा। कोई तेज़ी से भागता हुआ उसी की ओर आ रहा था। वह नाव छोड़कर उठ खड़ा हुआ और ध्यानपूर्वक आने वाले को देखने लगा। उसकी घबराहट बढ़ गई और वह साँस रोककर उत्सुकता से भागकर आने वाले की प्रतीक्षा करने लगा।

उसका अनुमान अब के ठीक न था। आने वाला उसका मित्र नहीं बल्कि माधुरी थी जो हवा की सी तेज़ी से उसकी ओर भागी चली आ

रही थी। राजेन्द्र के मस्तिष्क पर हथौड़े की सी चोट लगी और वह दूर ही से बोला, "माधुरी ! तुम···!"

"हाँ मैं—" उसने हाँपते हुए उत्तर दिया।

राजेन्द्र ने एक कड़ी दृष्टि उस पर डाली। वह कपड़े बदलकर हाथ में एक अटैची लेकर आई थी। राजेन्द्र को उसका निश्चय भाँपते देर न लगी। वह बोला—

"तुम्हें इस समय यूँ न आना चाहिए था।"

"इसलिये कि तुम रात के अंधेरे में यहाँ से भाग जाओ ?"

"हाँ, माधुरी ! दिन के उजाले में अब मैं वासुदेव का सामना न कर पाऊँगा।"

"और मैं···?"

"तुम···तुम तो उसका जीवन हो···कोई व्यक्ति अपने जीवन को नहीं ठुकराता···भूल हो जाना तो कोई बहुत बड़ी बात नहीं।"

"नहीं राजी ! अब मेरा यहाँ रहना सम्भव नहीं···यदि तुमने भी मुझे ठुकरा दिया तो मैं आत्महत्या कर लूँगी।"

"माधुरी ! मैं विवश हूँ···तुम लौट जाओ···इसी में तुम्हारी भलाई है।"

"वह मैं स्वयं समझती हूँ कि मेरी भलाई किसमें है···आप इतना शीघ्र क्यों बदल गये ?"

"माधुरी, परिस्थिति कभी मानव को बहुत बदल देती है···भावना में आकर हम बड़ी-बड़ी भूलें कर बैठते हैं···अब भी सँभल जायें तो अच्छा है···मैं किसी के घर की वसन्त लूटकर अपनी झोली भरना नहीं चाहता···यह बात मुझे आजीवन कोसती रहेगी।"

"तो क्या सब वचन भुलाकर, प्रेम से यूँ विमुख होकर आप प्रसन्न रह सकेंगे ?"

"माधुरी !" उसने काँपते हुए स्वर में कहा और क्षण-भर उसकी

श्रोर चुपचाप देखते रहने के पश्चात् फिर बोला, "परिस्थिति को समझो ···देखो तो हम ऐसी अथाह गहराई में गिरते जा रहे हैं जहाँ से निकलना असम्भव हो जायेगा।"

"इसकी मुझे कुछ भी चिन्ता नहीं···आप मेरे साथ हैं तो मैं बड़े से बड़ा अपमान भी सह सकती हूँ।"

"किन्तु, ऐसा क्यों ?"

"इसका उत्तर चाहते हो तो मेरे मन में झाँककर देखो···तुम्हारे सिवा यहाँ कोई दूसरा नहीं समा सकता।"

"इसका क्या विश्वास ?" राजेन्द्र ने उसके मुख से दृष्टि हटा ली और झील में देखने लगा। उसने अनुभव किया कि वह उसकी बात सुन-कर तड़प उठी थी।

"तो आप ने मुझ से क्या समझकर प्रेम किया था ? यही सुनाने के लिये ?" यह कहते हुए माधुरी के होंट काँप रहे थे। इसमें क्रोध की झलक थी।

राजेन्द्र ने एक कंकर उठाकर झील में फेंका और बोला—

"जो आज मेरी बनने के लिये अपना सब कुछ छोड़कर चली आई है क्या उसके लिये यह सम्भव नहीं कि कल मुझसे बड़ी कोई और आकर्षण शक्ति उसे मुझे भी छोड़ देने पर विवश करदे ?"

"आप केवल मेरी परीक्षा लेने के लिये यह खेल खेल रहे थे ?"

"कैसा खेल ?"

"प्रेम का !"

"माधुरी ! मैं अब जान पाया, यह प्रेम केवल कल्पना है और कुछ नहीं···टूटे हुए मन इसमें सहारा ढूँढते हैं, किन्तु यह उन्हें कभी भी धोखा दे सकता है।"

"आप ने पहले तो कभी ऐसे विचार प्रगट नहीं किये।"

"तब इसका ज्ञान न था।"

"दो घड़ी उनके साथ बैठने से ज्ञान प्राप्त हो गया ?"

"तुमने ठीक जाँचा। उसकी बेबसी ने ही मेरी आँखें खोल दीं। तुम ही बताओ उसमें कौनसा ऐसा अभाव है कि उससे प्रेम न किया जा सके...आचरण में, शिष्टता में, यहाँ तक कि शारीरिक सौन्दर्य में भी मुझसे बढ़-चढ़कर है...किन्तु आज तुम उसे ठुकराकर मेरे साथ भाग जाने को तैयार हो गई...प्रेम के लिये नहीं ऐश्वर्य के लिये, आनन्द के लिये, वासना-पूर्ति के लिये...और कौन जानता है एक दिन मुझे भी..."

"राजी !" उसने चिल्लाकर उसकी जबान बन्द करनी चाही। उसमें और सुनने का साहस न था। राजेन्द्र चुप हो गया और वह भरी हुई आँखों से दूर शून्य में देखने लगी।

"हाँ माधुरी ! एक दिन मुझे भी छोड़कर तुम किसी दूसरे के साथ भाग जाओगी।" उसने रुकते-रुकते कहा।

माधुरी की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। उसकी बुद्धि ने काम करना छोड़ दिया...वह एक ऐसी सीमा पर खड़ी थी जिसके दोनों ओर मृत्यु थी...वह क्या करे ? क्या इतनी दूर आकर लौट जाना उसके लिये सम्भव था ?

वह मौन थी और राजेन्द्र ने उसके मुख पर के बदलते हुए रंगों को निहारा। माधुरी की आँखों में आँसू छलके और फिर वहीं समा गये। उसने धरती पर रखी अटैची को हाथ में लिया और आस-पास दृष्टि दौड़ाने लगी।

"क्या सोच रही हो ?" मौन भंग करते हुए राजेन्द्र ने कहा।

"सोचने को रखा ही क्या है अब ?"

"बहुत कुछ— दुनिया इतनी छोटी नहीं जितना कि तुम समझ रही हो।"

"दुनिया तो बहुत बड़ी है, किन्तु मानव कितना तुच्छ है—यह मैं

आज ही जान पाई हूँ।" यह कहकर वह बिना उसकी ओर देखे झील के किनारे बढ़ चली। अभी वह कुछ दूर ही जा पाई थी कि राजेन्द्र के स्वर ने उसे रोक लिया। वह उसके पास आया और बोला—"कहाँ जा रही हो?"

"जहाँ भाग्य ले जाये।"

"भाग्य अथवा यह उखड़े हुए पाँव?"

"कुछ ही समझ लीजिये। बेबस व्यक्ति की मंजिल कहाँ है, वह स्वयं ही नहीं जानता।"

"तुम्हारे समान और भी तो कोई विवश है। वासुदेव का क्या होगा?"

"मुझ अभागिन के पास अब देने के लिये रखा ही क्या है?"

"प्रेम..."

"प्रेम!' वह व्यंगात्मक स्वर में बोली, "अभी तो आप कह रहे थे कि प्रेम टूटे हुए हृदय का झूठा सहारा है। इस पर निर्भर रहना धोखा खाना है।"

"ठीक ही तो है।"

"बड़ी विचित्र बात है, एक वह हैं जो मेरे जीवन को नीरस बना कर मेरी परीक्षा ले रहे हैं; और एक आप हैं कि मेरे प्रेम का उपहास उड़ा रहे हैं।"

"नहीं, माधुरी! मुझे समझने में भूल न करो।"

"यदि भूल हो भी गई तो क्या अन्तर पड़ता है। जाइये! नाव तैयार है। अब आपका-मेरा क्या सम्बन्ध है?" यह कहकर वह चल पड़ी।

राजेन्द्र ने लपककर उसे पकड़ लिया और दोनों कंधों से पकड़कर उसे झँझोड़ते हुए बोला—

"मेरी मानो तो अब भी लौट जाओ!"

माधुरी ने उसकी बात का कोई उत्तर न दिया और क्रोध भरी दृष्टि से उसे देखते हुए झटके से अलग हो गई। उसके होंट कुछ कहने को थरथरा रहे थे, पर शब्द गले में अटक गये। माधुरी ने आगे बढ़ना चाहा। राजेन्द्र ने फिर उसे रोक लिया और बोला, "माधुरी ! मैं जानता हूँ कि मैं तुम्हें नहीं रोक सकता। मैं यह भी जानता हूँ कि एक विवश और दुखी मानव की अन्तिम मंजिल कहाँ होती है...।"

'मेरा सौभाग्य है कि आपने मेरे निश्चय को भाँप लिया।"

"देखो...माधुरी ! आकाश पर काली घटा छाई हुई हैं। कितनी भयानक हैं यह घटायें, किन्तु; जब बरसकर हलकी हो जायेंगी तो आकाश निखरकर निर्मल हो जायेगा, मानो वहाँ कुछ था ही नहीं। मानव-मन भी इसी आकाश की भाँति है। इसमें भावना के अनेक तूफान आते हैं—दुख की कितनी बदलियाँ छा जाती हैं—कितनी ही घनघोर वृष्टि होती है—पर जितना भयानक तूफान, उतना ही निखार आता है। तुम्हारे पति तो इतने विशाल-हृदय हैं कि उनके मन में कोई तूफान या घटा अधिक समय तक नहीं टिक सकती। वह तुम्हें कभी दुख नहीं दे सकते। माधुरी ! मैं तुम्हें क्योंकर समझाऊँ, जिसे तुम शत्रु समझ-कर छोड़े जा रही हो वह व्यक्ति वास्तव में देवता है। इसी झील के किनारे एक रात जानती हो उसने मुझसे क्या कहा था ?' "

"क्या ?"

"उसने मुझसे कहा था—'माधुरी तुम से प्रेम करती है, इस से मुझे दुख नहीं प्रसन्नता ही है। और मेरी यही इच्छा भी है कि जीवन में जो कुछ मैं उसे न दे सका, वह प्रसन्नता तुम उसे दे दो।' "

"उन्होंने हमें प्रेम करते कब देखा ?"

"उस दिन जब वह कोचवान की मृत्यु के पश्चात् शहर से लौटा था, और गोल कमरे में बैठा अँधेरे में हमारी बातचीत सुन रहा था। तुम तो कॉफ़ी बनाने चल दीं—तुम उसे देख न पाई पर मैंने उसे देख

लिया ।"

"आप ने मुझ से यह कहा क्यों नहीं ?"

"कैसे कहता ? कुछ समझ नहीं आ रहा था—वह भी बेबस था और मैं भी ।"

माधुरी मौन थी, और एक गहरी सोच में डूब गई । राजेन्द्र ने उसके कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा—

"माधुरी ! जीवन में कई रहस्य ऐसे भी होते है, जो व्यक्ति अपनी पत्नी से कहने से कतराता है और मित्र से कह डालता है···।"

"क्या ?" उसने उत्सुकतापूर्वक पूछा ।

"मैंने वासुदेव को वचन दिया था कि उसका रहस्य किसी पर प्रगट न करूँगा । किन्तु, आज वह वचन तोड़कर तुम से कहे देता हूँ···।"

"कहिये !" वह उसका रहस्य जानने को आतुर हो रही थी ।

"एक स्त्री नहीं, मित्र समझकर···"

"कहिये ना···आप रुक क्यूं गये ?"

"माधुरी···माधुरी···तुम्हारा पति नपुंसक है···"

राजेन्द्र के मुख से यह शब्द सुनते ही उस पर एकाएक एक बिजली सी गिरी···अटैची उसके हाथ से छूटकर धरती पर गिर गई, और वह धम से नीचे बैठ गई, मुख घुटनों में दबा लिया । राजेन्द्र खड़ा उसे देखता रहा ।

राजेन्द्र ने उससे कुछ भी न छिपाया, उसने उसे वासुदेव के बन्दी हो जाने—कैद से भागने—गोली लगने और आॅपरेशन होने की सब घटनाएँ, जो उसने इसी झील के किनारे सुनी थीं—एक एक करके सब माधुरी को सुना दीं । माधुरी सुनती रही, और अपने आप में खो गई । उसे यूं लग रहा था मानों सैकड़ों विषैले नाग उसके शरीर से लिपटकर उसका लहू चूस रहे हों । उसका मन चाहा कि वह जी-भरकर रोये; किन्तु, उसके आँसू भी उसका साथ न देना चाह रहे थे । उसे समझ न

आ रहा था कि मन का बोझ कैसे हल्का करे।

अतीत का एक-एक चित्र उसकी आँखों में घूमने लगा—'उसके पति कितने बेबस थे—कितने दुखी और वह स्वयं कितनी निर्दयी—उसने कभी उनके मन में झाँककर उनकी पीड़ा को बंटाने का प्रयत्न नहीं किया, बल्कि उसने उल्टे अपनी भावनाओं को उभारा और उनकी मान-मर्यादा से खेलने को तैयार हो गई। कितना बड़ा पाप था जिसका कोई प्रायश्चित नहीं।'

सहसा वह राजेन्द्र का स्वर सुनकर चौंक उठी। उसने सिर ऊपर उठाने का प्रयत्न किया, किन्तु; उसमें अब उस दर्पण को देखने का साहस न था, जिसमें उसे अपने पाप का प्रतिबिम्ब दिखाई दे। वह जा रहा था और उसे घर लौट जाने को कह रहा था। जब माधुरी ने घुटनों से अपना सिर उठाया तो वह चुप हो गया। दोनों ने एक दूसरे को देखा, उसने बिदा कही और वह चला गया।

माधुरी खोई-खोई सी उसे जाते हुए देखती रही। उसने एक बार भी उसे रुक जाने को न कहा। राजेन्द्र नाव में बैठा और चल दिया।

एकाएक माधुरी के हृदय में छिपा तूफान उबल पड़ा। वह फूट-फूट-कर रो पड़ी। जाने वह कितनी देर तक बैठी रोती रही—आकाश पर जमी घटाएँ छँट रही थीं—दूर क्षितिज में प्रभात का तारा सुबह का संदेश दे रहा था। रोने से उसका मन हल्का हो गया था, किन्तु; शरीर में हल्की-हल्की पीड़ा थी—थकान थी।

वह उठी, अटैची को थामा और झील को देखने लगी, जहाँ दूर-दूर तक केवल जल ही जल था। राजेन्द्र जा चुका था, दूर...बहुत दूर... उसके जीवन से दूर...वह अब कभी लौटकर न आयेगा। उसने आँचल से अपने अश्रु पोंछे और बिना किसी निश्चय के झील के किनारे-किनारे चल पड़ी। उसे कुछ सूझ न पड़ता था, वह क्या करे? कहाँ जाये? वह एक भटके हुए यात्री के समान अनजानी राह पर खो गई थी। उसी

समय झील की लहरों ने जैसे उसके कानों में गुनगुनाहट सी भरी—

'माधुरी ! मैं जानता हूँ, मैं तुम्हें नहीं रोक सकता—मैं यह भी जानता हूँ कि एक दुखी और बेबस व्यक्ति की अन्तिम मंजिल क्या है, पर मेरी तुम से यही प्रार्थना है कि तुम लौट जाओ ! तुम्हारे पति अब भी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

उसके बढ़ते हुए पाँव एकाएक रुक गये। वह पीछे मुड़ी और घर की ओर तेज-तेज पाँव उठाकर चलने लगी।

घर वैसे ही मौन था, जैसे वह छोड़कर गई थी। किसी ने उसे आते हुए न देखा। अँधेरा धीरे-धीरे छँट रहा था।

दबे पाँव वह अपने कमरे की ओर जाने लगी। वासुदेव का कमरा खुला था। उसने भीतर झाँककर देखा वह अपने बिस्तर पर न था। किसी विचार से वह एकाएक काँप गई और द्वार के भीतर खड़े होकर फिर उसने भली प्रकार देखा। वह बालकनी में कुर्सी पर बैठा, झुटपुटे में झील को देख रहा था।

वह भीतर आ गई और धीरे-धीरे पाँव रखती उसके पीछे जा खड़ी हुई। वह स्थिर बैठा मूर्तिवत् कुछ सोच रहा था।

माधुरी बड़ी देर तक खड़ी उसे देखती रही। वह उससे क्षमा माँगने के लिये आई थी, परन्तु उसके सामने आने का साहस उसमें न था। वासुदेव एकटक दूर क्षितिज में देखे जा रहा था।

माधुरी में और धैर्य न रहा। उसने रोते हुए, बाँहें वासुदेव के गले में डाल दीं। रोती जाती थी और कहती जाती थी—

"मेरे देवता ! मुझे क्षमा कर दो। मैंने घोर पाप किया है, मैंने विश्वासघात किया है······मुझे इसका दण्ड दीजिये। मैं प्रसन्नतापूर्वक उसे स्वीकार करूँगी, किन्तु ; आप मुझसे यूँ रूठिये मत। यूँ मौन न रहिये—मैं पागल हो जाऊँगी···मैं आपके पाँव पड़ती हूँ, कुछ बोलिये ! आप ने इतने दिन मन की बात क्यूँ न कही ? यदि आप जीवन में इतना

शान्त रह सकते हैं, तो क्या मैं अपने देवता की बेबसी पर क्षणिक सुख न्योछावर न कर सकती थी। मैं आपको उपहास का पात्र बनाऊँगी — यह आप ने क्यूँ सोचा ? मैंने आप को अब तक न पहिचाना था, अब तक न समझा था—।" एक ही साँस में रोते-रोते जाने वह क्या-क्या कहती चली गई। जब साँस लेने को रुकी तो उसने वासुदेव को देखा। वह अभी तक किसी गहरे सोच में खोया सा था, उसकी आँखों से बहे हुए आँसू अभी तक उसके गालों पर जमे थे।

उसके हाथ से कागज का एक पुर्जा स्वयं ही छूटकर फर्श पर गिरा। माधुरी ने झट उसे उठा लिया और दिन के धीमे प्रकाश में पढ़ने लगी। लिखा था—

"प्रिय मित्र !

तुम जब सुबह उठोगे तो मुझे न पाओगे क्योंकि मैं यहाँ से बहुत दूर जा चुका हूँगा। सम्भव है कि माधुरी भी ऐसा ही करे इसलिए कि वह मेरे पाँव की आहट सुनती रहती है और कभी भी तुम्हें छोड़कर मेरे पीछे आ सकती है…किन्तु; मित्र ! विश्वास रखो, मैं तुम्हारे सुख पर डाका डालकर कभी न भागूँगा बल्कि तुम्हारी अस्थायी गई हुई प्रसन्नता को लौटाने का ही प्रयत्न करूँगा। जब से तुमने अपने मन का रहस्य मुझ से कहा है, मैं कई बार प्रयत्न कर चुका हूँ कि माधुरी से साफ-साफ कह दूँ किन्तु; मेरी जबान नहीं खुलती। तुम उसके जीवन-साथी हो, मैं प्रार्थना करता हूँ कि तुम स्वयं ही उससे कह दो…मैं भला यह बात उस से क्योंकर कहूँ…वह तो मेरी भाभी है…

तम्हारा

राजी"

माधुरी के हृदय में एक पीड़ा उठी और अंग-अंग में फैल गई। उसने पत्र को उँगलियों में मरोड़ा और फर्श पर फेंक दिया। वासुदेव वैसे ही बिना उसकी ओर देखे बेसुध सा विचारों में डूबा हुआ बैठा रहा। पत्र

फेंककर वह बाहर जाने के लिये मुड़ी। सहसा उसकी साड़ी का पल्लू कुर्सी में अटक गया। उसने एक बार मुड़कर पल्लू को छुड़ाया और फिर बाहर की ओर बढ़ी। एक ही पग चली होगी कि पल्लू फिर अटक गया किन्तु, अब के वह कुर्सी में न अटका था बल्कि वासुदेव के हाथ में था। उसने मुड़कर देखा और वहीं रुक गई।

"कहाँ जा रही हो?" वासुदेव ने करुण स्वर में पूछा।

"कहीं भी···अब आपको यह अशुभ मुख न दिखाऊँगी···मैं आपके योग्य नहीं।" भर्राये हुए स्वर में उसने उत्तर दिया।

"तो मैं फिर किसके सहारे जिऊँगा?" हाथ में लिया आँचल छोड़कर वह उठ खड़ा हुआ। माधुरी ने मुड़कर वासुदेव की ओर देखा। उसकी आँखों में स्नेह था और दुख था······क्रोध न था। वह धीरे-धीरे हाथ फैलाये उसी की ओर बढ़े आ रहा था।

"आप—"थरथराते हुए होंटों से उसने कहा और कुछ रुककर फिर बोली, "आपने···मुझे · क्षमा कर दिया?"

वासुदेव ने हाँ में सिर हिला दिया। उसकी आँखों में एक विशेष चमक थी और होंटों पर छिपी मुस्कान नवजीवन का सन्देश दे रही थी। वह रोते-रोते मुस्करा पड़ी। दोनों एक साथ, एक-दूसरे की ओर बढ़े। वासुदेव ने उसे अपने बाहु-पाश में ले लिया और बोला—

"माधुरी! राजी मेरा प्रिय मित्र है—मित्र जीवन में कभी धोखा नहीं देता। क्या तुम भी मेरी मित्र न बन सकोगी?"

माधुरी ने अपना मुख उसके वक्ष में छिपा लिया। सिसकियों भरे स्वर में बोली, "हाँ···"

वासुदेव उसकी पीठ को धीरे-धीरे सहलाने लगा, जैसे कोई प्रौढ़, किसी शिशु को प्यार करे। दोनों की आँखों से आँसू बह रहे थे, जिनमें छिपी पीड़ा घुलकर बह रही थी।

घटा छाई और बरसी—छँट गई और आकाश निखर गया। मन

मैले हुए—धुले और धुलकर उजाले हो गये। जीवन महान् लक्ष्यों के आधार पर ही टिका है, क्षणिक भावनाओं पर नहीं ।

११

माधुरी घर पर अकेली थी। गंगा काम-काज से अवकाश पाकर रसोईघर में ही आराम कर रही थी और वासुदेव किसी काम से झील के पार गया हुआ था। वह अपने कमरे में लेटी किसी उपन्यास का अध्ययन कर रही थी।

बाहर ज़रा सी आहट से भी चौंककर वह अपना धड़ उठाकर बाहर झाँक लेती और किसी को न पाकर फिर नावल में खो जाती। पहले इसी हवेली में वह घंटों अकेली बैठी रहती थी, किन्तु उसे कभी घबराहट न होती। पर अब जब कभी वासुदेव बाहर जाता तो उसका मन कम्पित हो उठता। भाँति-भाँति के विचार उसे घेर लेते। वह स्वयं को किसी न किसी कार्य में व्यस्त रखती, किन्तु फिर भी उसकी व्याकुलता उसे अपने पंजे में दबाये रखती। जितना वह उससे छुटकारा पाना चाहती, वह उतना ही बढ़ जाती। वासुदेव की अनुपस्थिति में उसे घर की हर वस्तु काटने लगती। यद्यपि आज वह पढ़ने में तल्लीन थी, फिर भी उसके कान उस आहट को सुनने पर लगे थे कि कब वह आयेगा।

हवा तेज़ थी और घर की खिड़कियाँ-द्वार बन्द होने पर भी हल्की सी खटखट हो जाती। वह लेटी वासुदेव की प्रतीक्षा कर रही थी। वह

अभी तक न लौटा था। कभी-कभी पुस्तक हाथ में लिये ही वह कुछ सोचने लगती। प्रतीक्षा की घड़ियाँ लम्बी ही होती जा रही थीं।

साँझ ढलते ही गंगा भीतर आई। वह अभी तक उपन्यास पढ़ने में तल्लीन थी। आहट हुई और उसने पुस्तक से आँख हटाकर कनखियों से गंगा को देखा। उसके हाथ में दो पत्र थे जो शायद डाकिया दे गया था। माधुरी ने हाथ बढ़ाकर दोनों पत्र ले लिये और ध्यानपूर्वक उन्हें देखने लगी। पत्र उसके पति के नाम थे। गंगा पत्र देकर चाय की पूछकर वापस लौट गई। जब वह बाहर चली गई तो माधुरी ने उत्सुकतापूर्वक फिर पत्रों को देखा। एक तो सरकारी था जो उसने मेज़ पर रख दिया और दूसरा किसी ऐसे व्यक्ति का था जिसकी लिखाई उसे जानी-पहचानी सी अनुभव हुई। उसने ध्यानपूर्वक फिर उस पर लिखे पते को देखा। हस्ताक्षर राजेन्द्र के प्रतीत होते थे।

वह उठकर बैठ गई और पत्र हाथ में लेकर सोचने लगी। आज बड़े समय के बाद राजेन्द्र का पत्र आया था। जब से वह उन्हें छोड़कर गया था, यह उसका पहला पत्र था। पत्र को थामे सहसा उसकी उँगलियाँ काँपने लगीं और उसने उसे भी मेज़ पर रख दिया। स्वयं लेटकर फिर उपन्यास पढ़ने लगी। किन्तु, अब उसकी दृष्टि पुस्तक पर न जम रही थी। इस पत्र ने उसके मन में कोलाहल उत्पन्न कर दिया था। उसने पुस्तक बन्द कर दी और छत की ओर देखने लगी।

इस पत्र ने उसके घाव खोल दिये थे और दबी हुई पीड़ा को जागृत कर दिया था। अतीत चलचित्र की भाँति उसके मस्तिष्क पर प्रतिबिम्ब डालने लगा और वह बेचैन हो उठी। वह सोचने लगी···न जाने वह कहाँ होगा? कैसे होगा?···उसने अपने मित्र को भी कोई पत्र न लिखा था। कई बार वासुदेव ने बातों में उसका वर्णन किया; किन्तु माधुरी ने टाल दिया और दूसरे कमरे में चली गई।

अबकी और तबकी माधुरी में बड़ा अन्तर था। अब वह पथ-भ्रष्ट

हो जाने का कलंक प्रेम द्वारा मिटा चुकी थी। अब वह तन-मन से वासुदेव की सेवा में लगी रहती और उनके सुख-चैन का बड़ा ध्यान रखती जिससे उसके मन में कभी ऐसा विचार न उठ खड़ा हो जिसका आधार किसी कल्पित शंका पर हो।

किन्तु, वासुदेव को अब भी इन खुशियों के गगन में कभी-कभी कोई ऐसी बदली दिखाई दे जाती जिसमें उसके विश्वास और आँसू छिपे हुए झलक पड़ते। उसने कई बार रात के मौन में चुपचाप उसे कुछ सोचते हुए पाया है···उसके लिये माधुरी ने अपनी सब इच्छाओं का दमन कर लिया था···हाँ, उसी के लिये···माँ बनने की नारी की प्रबल इच्छा उसमें भी थी किन्तु ; उसने मन को मारकर इस पर अधिकार पा लिया था···और वह करती भी क्या ?

अब उसमें पहले के सी चंचलता न रही थी। वही माधुरी जो पहले इन जंगलों में हिरनी के समान फुदकती फिरती, अब बहुत कहने पर भी घर से बाहर न निकलती। वासुदेव के लाख कहने पर भी कोई न कोई बहाना बनाकर वहीं पड़ी रहती। उसका मुख दिन-प्रतिदिन गम्भीर होता जा रहा था। वासुदेव को यूँ लगता जैसे अपनी भावनाओं पर विजय पाने के लिये उसे बहुत कष्ट उठाना पड़ रहा हो। वह अपनी आकांक्षाओं को बलपूर्वक दबाना चाहती। यह विचार वासुदेव के मन को कचोटता रहता। एक ओर विवशता और दूसरी ओर मानव-हृदय की करुण पुकार।

किन्तु, आज इस पत्र ने उसके सोये हुए अरमानों को फिर जगा दिया। एक समय से जो मन के तार मौन थे, उसने फिर से छेड़ दिये, जो पीड़ा उसने अपने मन की गहराइयों में दबा दी थी, वह फिर से उभर आई। उसके मुख से एक आह निकली और उस वातावरण में खो गई। वह मौन बैठी मन की पीड़ा और व्याकुलता को दबाने का व्यर्थ प्रयत्न करने लगी। व्यक्ति लाख चाहे कि अपने अतीत को किसी

ऐसे अन्धकार में छिपा दे, जहाँ जीवन की किरण कभी न पड़े और याद का पर्दा कभी न उठे, परन्तु, अनजाने ही कभी किसी झौंके के साथ वह पर्दा हट जाता है और मन की टीस उभरकर ऊपर आने लगती है। अतीत के चित्र फिर उसके मस्तिष्क पर उभरने लगे—कैसी विचित्र है यह पीड़ा—यह टीस—इस तड़प में भी एक अनोखा आनन्द है।

साँझ ढलने को थी और न जाने माधुरी लेटी क्या सोचे जा रही थी। वह एकटक छत की ओर देखे जा रही थी। सहसा उसकी आँखों से आँसू ढलके और उसकी गालों पर आ गये। उसे इसका भान तक न हुआ कि वासुदेव कब का लौट आया था और खड़ा उसे देख रहा था। अपने विचारों में खोई—वह वर्तमान को एकदम बिसराये हुए थी। वासुदेव ने दबे पाँव जाकर खिड़की खोल दी। अंधेरे कमरे में प्रकाश फैल गया और शीतल हवा के झौंके से पर्दे लहरा उठे।

माधुरी ने चौंककर सामने देखा। वासुदेव को देखकर वह सँभली। अपने मानसिक द्वन्द को छिपाते उठ बैठी। वासुदेव मुस्कराया और कुर्सी खींचकर उसके पास बैठ गया।

"इतना सुहाना समय और तुम द्वार बन्द किये बैठी हो?" वासुदेव ने कहा।

"और करती भी क्या···? आप भी तो घर पर न थे।"

"ओह! आज कुछ देर हो गई—यह भी सौभाग्य समझो कि साँझ ढलने से पहले ही आ गया···।"

"क्या आधी रात को लौटने का निश्चय था?"

"विचार तो कुछ ऐसा ही था, किन्तु; तुम्हारा ध्यान आते ही भाग आया···।"

"इस विचार के लिये धन्यवाद।" माधुरी ने उसकी ओर देखकर कहा और फिर आँखें झुका लीं। वासुदेव ने उसका हाथ अपने हाथों में ले लिया और उसे अपनी ओर खींचा—इससे पहले कि वह उसे खींच

पाता, माधुरी ने दोनों पत्र उसके सामने रख दिये। वासुदेव ने उसका हाथ छोड़ दिया और पत्र पढ़ने लगा।

माधुरी उसे पत्र देकर बाहर चली गई और गंगा को ऊँचे स्वर में पुकारकर चाय लाने को कहा। जब वह लौटी तो वह राजेन्द्र का पत्र पढ़ रहा था। वह उसके पास आकर खड़ी हो गई पर पत्र के सम्बन्ध में कुछ पूछने का साहस न कर सकी।

वासुदेव ने पत्र पढ़कर एक ओर रख दिया और तीखी दृष्टि से माधुरी को देखा। माधुरी अपनी घबराहट को छिपाते बोली—

"चाय पीजियेगा या कॉफ़ी ?"

आर्डर तो चाय का दे आई हैं और मुझ से पूछती हैं···?"

"नहीं···कहिये तो !"

"आज हम चाय ही पियेंगे···प्रतिदिन अपनी रुचि होती है···आज तुम्हारी ही सही ···"

वह मौन थी। फिर अलमारी खोलकर उसमें से बिस्कुट का डिब्बा निकालने लगी। वासुदेव कुछ क्षण उसे देखता रहा फिर बोला—

"जानती हो यह पत्र किसका है ?"

माधुरी ने केवल प्रश्नसूचक दृष्टि से उसे देखा।

"राजेन्द्र का है—वह आजकल पूना में है।"

माधुरी फिर भी मौन थी। एक साथ कई प्रश्न उसके होंटों पर आकर रुक गये। वह कुछ भी पूछ न सकी और अपनी घबराहट को छिपाने के लिये खूँटी पर से तौलिया उतारकर उसे देने लगी।"

"एक शुभ सूचना है !" वासुदेव फिर बोला।

"क्या ?" उसने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

"तुम्हारे राजी ने ब्याह कर लिया है।" यह कहकर वासुदेव ने पत्र उठा माधुरी के हाथ में दे दिया और स्वयं तौलिया लेकर मुँह धोने को चला गया। माधुरी के शरीर में एक सिहरन सी दौड़ गई जैसे उसने

कोई अनहोनी बात सुनी हो—क्या इस सूचना ने उसके मन में कोई जलन सी उत्पन्न कर दी थी ? नहीं···नहीं, उसे तो प्रसन्न होना चाहिये, राजेन्द्र का घर बस गया···उसका जीवन सफल हुआ—वह किसी दिन अपनी पत्नी को लेकर उन्हें मिलने अवश्य आयेगा।

माधुरी ने झट से लिफाफा खोला और पत्र बाहर निकाला। पत्र के साथ एक चित्र बाहर निकलकर धरती पर गिर पड़ा उसने चित्र को उठा लिया और ध्यानपूर्वक देखने लगी। यह राजेन्द्र और उसकी पत्नी का चित्र था।

एक युवती नई नवेली दुल्हन बनी उसके साथ खड़ी थी। दोनों को एक साथ देखकर क्षणभर के लिये माधुरी का मुख लाल हो गया। वह पत्र पढ़ने लगी। पत्र कुछ ही पंक्तियों का था, जिसमें राजेन्द्र ने ब्याह में उन्हें आमन्त्रित न कर सकने की क्षमा माँगी थी। उसका ब्याह हुए साल भर हो चुका था। उसने लिखा था कि वह स्वयं भी नहीं जानता कि क्यूँ उसने उन्हें ब्याह की सूचना नहीं दी और अन्त में एक पंक्ति में उसने माधुरी को भी याद किया था। लिखा था, "यदि माधुरी वहाँ हो तो उसे अपनी भाभी का चित्र दे देना।"

मुँह पोंछता हुआ वासुदेव स्नानगृह से बाहर आया। माधुरी ने उसे आता देखकर झट से चित्र लिफाफे में रख दिया। वासुदेव ने मुस्कराते हुए पूछा—

"कहो, कैसी लगी ?"

"क्या ?"

"राजेन्द्र की पत्नी ?"

"बहुत सुन्दर···आपका क्या विचार है ?"

"स्त्री को स्त्री की दृष्टि अधिक परख सकती है···।"

"किन्तु, पुरुषों से कम।"

"वह कैसे ?"

"हम उसे ऊपर से देखते हैं, और आप उसके मन की गहराइयों में उतर जाते हैं।"

"आश्चर्य तो यह है कि फिर भी उसका भेद नहीं पा सकते।"

"मैं नहीं मानती।"

"अब तुम ही कहो कि लगभग हमें पाँच वर्ष एक साथ रहते हो गये हैं, परन्तु अभी तक तुम्हारे मन को समझ नहीं पाया।"

"वह इसलिये कि आप ने इसे समझने का कभी प्रयत्न नहीं किया।"

वासुदेव कुछ कहने को था ही कि कोई द्वार से भीतर आया और वह मौन हो गया।

गंगा चाय लेकर आई और मेज पर ट्रे रखकर चली गई। वासुदेव बैठ गया और माधुरी चाय बनाने लगी। कुछ क्षण वातावरण में मौन छाया रहा। वासुदेव ने राजेन्द्र का चित्र निकाला और देखने लगा। माधुरी दृष्टि झुकाये चाय बनाती रही।

"मन चाहता है कि अभी पूना चला जाऊँ और दोनों को कुछ दिन के लिये यहाँ ले आऊँ..."

"तो चले जाइये न... !"

"अकेले नहीं...तुम भी साथ चलो तो !" चाय का प्याला हाथ में लेते वासुदेव ने कहा।

"मैं...! नहीं, आप जाइये...मुझे वहाँ नहीं जाना।"

"तुम्हें अपनी भाभी से मिलने की इच्छा नहीं ?"

"यह किसने कहा ? मुझे उनके घर यूँ जाना अच्छा नहीं लगता।"

"लो—मैं भी न जाऊँगा...।"

माधुरी मौन रही। वासुदेव जाये या न जाये, किन्तु; वह नहीं जायेगी। वह उसे जाने से कैसे रोक सकती थी...वह उस पर यह भी स्पष्ट न होने देना चाहती थी कि वह स्वयं राजेन्द्र से मिलने की इच्छुक है और अभी तक उसके मन में उसकी याद बसी है।

दूसरे दिन जब वासुदेव बाहर चला गया तो माधुरी ने उसके कमरे में जाकर राजेन्द्र का पत्र निकाला और उनकी तस्वीर देखने लगी। उसकी पत्नी वास्तव में बड़ी सुन्दर थी। माधुरी का मन तो चाहता था कि किसी प्रकार वासुदेव पूना चला जाये और उन्हें अपने यहाँ ले आये। वह एक बार स्वयं राजेन्द्र से क्षमा माँगने के लिये व्याकुल थी, किन्तु यह कामना किसी पर प्रगट न कर सकती थी।

इसके पश्चात् घर में कई बार राजन की बात छिड़ी, पर माधुरी ने उसको बढ़ने नहीं दिया। यह बातें घंटों उसके अधूरे सपनों को कुरेदती रहतीं और वह उन्हें भुलाने का प्रयत्न करते-करते बेसुध हो जाती। कभी-कभी तो उसे ऐसा लगता, मानों राजन और कुमुद उसके घर अतिथि बनकर आ गये हों और वह उनकी आवभगत में लगी हो। पर विचारों का ताँता टूटते ही वह तड़पकर रह जाती।

थोड़े दिनों बाद राजेन्द्र का दूसरा पत्र आया। लिखा था कि कुमुद बहुत बीमार है और उसे हस्पताल में भरती करवा दिया गया है। उसे एकाएक हो क्या गया है? इसका कोई विवरण न था। यह पढ़कर दोनों को चिन्ता हुई। वासुदेव ने तो चिन्ता उस पर स्पष्ट कर दी किन्तु माधुरी ने कुछ प्रगट न होने दिया। वासुदेव पूना जाना चाहता था; किन्तु वह माधुरी को अकेला छोड़कर न जाना चाहता था। और वह वासुदेव के साथ जाकर दबी हुई चिंगारी को कुरेदना न चाहती थी।

उसने अपने आपको लाख सँभालना चाहा, किन्तु मन था कि डूबा जा रहा था। डर और कँपकँपी से लहू जमकर रह गया। ऐसा मालूम हो रहा था कि सारा शरीर सुन्न हो गया हो और कोई लाखों सुइयाँ चुभोकर उसे सुध में लाना चाह रहा हो। फिर भी वह थी कि निष्प्राण सी गिरी जा रही थी। यौवन का उन्माद उतर चुका था। उसे ऐसा अनुभव हो रहा था जैसे कोई उसे पर्वत की चोटी पर ले गया हो और फिर ऊपर से एकाएक उसे नीचे धकेल दिया गया हो—वह मर रही हो और

अपनी मृत्यु का तमाशा अपनी आँखों से देख रही हो।

होनी को कौन टाल सकता है! कुछ दिन के पश्चात् राजेन्द्र का एक एक्सप्रेस तार प्राप्त हुआ। कुमुद की दशा बहुत बिगड़ चुकी थी। उसने वासुदेव को बुलाया था। वासुदेव ने माधुरी को फिर साथ चलने को कहा, परन्तु उसने फिर भी इन्कार कर दिया और वासुदेव अकेला ही जाने की तैयारी करने लगा।

वह चला गया और माधुरी अकेली रह गई। किन्तु, उसके मन की व्यग्रता वैसी ही रही। उसकी व्याकुलता बढ़ती ही चली गई। वह वहाँ अकेली घबराने लगी और वासुदेव के साथ न जाकर पछता रही थी। भाँति-भाँति के विचार उसे घेर लेते। 'राम जाने वह क्या सोचते होंगे? जब वह वहाँ अकेले जायेंगे तो राजी उनके साथ मुझे न देखकर क्या सोचेगा? क्या कहेगा? कहीं वह यह न सोच बैठे कि मैं कुमुद से ईर्ष्या करने लगी हूँ।' ऐसे ही विचार उसके मस्तिष्क में चकर काटने लगते। वह एक पिंजरे के पक्षी के समान फड़फड़ाकर रह जाती। उसे किसी भी भाँति चैन न पड़ता।

वासुदेव को गये दस दिन बीत गये, पर उसकी कोई सूचना न थी। जाते हुए वह कह गया था कि कुमुद के ठीक होने पर वह दोनों को संग ले आयेगा। यदि उनके आने की सम्भावना न हुई तो वह उन्हें देखकर स्वयं वापस लौट आयेगा। उसने इस बीच में एक पत्र भी न डाला—हो सकता है कि उन लोगों ने आने का निश्चय कर लिया हो और वह रुक गया हो। बस, इसी विचार से उसे कुछ सांत्वना मिलती। वह अपने घर को नये-नये ढंग से सजाती और सँवारती ताकि कुमुद को अपनी योग्यता से प्रभावित कर पाये।

अगले दिन भी कोई पत्र न आया। नह निराश हो गई। उसने खाना भी न खाया और अपने कमरे में जा पलंग पर पड़ रही। साँझ ढलती जा रही थी। अनजाने ही उसका मन बैठा जा रहा था। वह मन ही मन

कहती कि रात हो ही न। यह अँधेरे की चादर उसके मन में भय का संचार कर देती। वह इस दिन के उजाले का साथ चाहती थी।

मन के भीतर जब भय अँगड़ाइयाँ लेने लगे तो बाहर के अँधेरे और तनिक से खटके से भी वह डरने लगता है, जब दिन भर के उजले नजारों को रात्रि की काली चादर अपने में छुपाकर आँखों के सामने छा जाती है तब मन की परतों में छुपा पाप साक्षातकार होने लगता है, जिसके स्मरण मात्र से ही हृदय थरथराने लगता है।

उस समय ठीक ऐसी ही दशा माधुरी की भी थी। रात्रि की काली चादर को फैलते देखकर वह अपने मन को सँभालने की चेष्टा कर रही थी। उसके मन में उठता गुब्बार और मस्तिष्क का विकार अपने सब बीते दिनों की वह पाप-युक्त घड़ियाँ उजागर कर रहा था जो उसे इन अँधेरी रातों में न जाने कब तक तड़पाती रहतीं। उसे लगता कि कोई उसके मन को दृढ़ता से अपनी मुट्ठी में जकड़े हुए है और उसे निर्दयता से कुचल देना चाहता है।

वह बीती भीगी रातें, झील के मदहोश किनारे, सरसराते हुए हवा के तीव्र झोंके और उनमें बसी मादक सुगन्ध—एक-एक करके इस अँधेरे में जुगनू की भाँति उसके मानस पटल पर चमकने लगी थीं। उसकी नसें खिंची जा रही थीं, नाड़ी थरथरा रही थी, होंट कँपकँपा रहे थे और घबराहट के कारण माथे पर पसीने के कतरे जमा हो रहे थे।

अचानक उसे वासुदेव का ध्यान आया। मन को सहारा मिला और वह गुमसुम सी अपने कमरे में आ गई।

रात अभी हुई ही थी। माधुरी पलंग पर लेटी वासुदेव के विषय में सोचती जा रही थी। अकेले में भय न लगे इस कारण उसने गंगा को अपने पास ही बिठा लिया और उससे बातें करने लगी। माधुरी के कान गंगा की बातों पर लगे थे और मन पूना में था।

रात का अभी पहला पहर ही था। बाहर हल्की सी बूँदाबाँदी हो

रही थी। एकाएक फाटक पर खटका हुआ। कोई द्वार खटखटा रहा था। वह चौंककर उठ बैठी—गंगा बात करते-करते यूँ रुक गई मानो रिकार्ड पर से कोई सुई हटा ले। दोनों एक दूसरे की ओर देखने लगीं।

"जरा देख तो कौन है ?" माधुरी ने गंगा से कहा। गंगा बाहर चली गई। उसने लपककर साथ की खिड़की खोली और नीचे झाँककर देखा जहाँ सहमी हुई गंगा ड्योढ़ी की ओर जा रही थी।

गंगा के पहुँचने से पहले ही चौकीदार ने फाटक खोल दिया था। माधुरी साँस रोके नीचे देख रही थी। उसके कानों में वासुदेव का स्वर पड़ा। वह कह रहा था—

"नये अतिथि को भीतर ले आओ।" माधुरी वापस बिस्तर पर आ बैठी। उसका पति आ गया था—शायद राजेन्द्र और कुमुद भी साथ थे। राजेन्द्र के विचार से ही वह सिहर उठी और साँस रोके उनकी पदचाप सुनने लगी। उसमें इतना साहस न था कि बाहर जाकर वह उन लोगों का स्वागत करती।

ज्यों ही वासुदेव पर्दा हटाकर भीतर आया, वह झट से खड़ी हो गई। दृष्टि मिली—वासुदेव ने गम्भीर मुख पर मुस्कराहट लाते हुए कहा—

"माधुरी कैसी हो ?"

"अच्छी हूँ···आप आ गये··· ?"

"लगता तो ऐसा ही है।"

"परदेश क्या गये कि बात करने का ढंग ही बदल गया।"

"क्यों ?"

"अपने घर आकर भी प्रत्येक वस्तु को एक अपरिचित की दृष्टि से देख रहे हैं।"

"लेकिन तुम्हें नहीं।"

"कैसे विश्वास करूँ ?"

"अपने मन से पूछो।"

"हटिये···"

उसने निकट ही खड़ी गंगा की ओर संकेत किया और फिर नजरें अपने पति की ओर लगा दीं। माधुरी ने अपनी चोर-निगाहों को थोड़ी दूर तक ले जाते हुए, धीमे से पूछा—

"कोई साथ भी है क्या ?"

"हाँ !···देखो तो किसे लाया हूँ···!"

माँधुरी ने द्वार पर देखा वहाँ कोई न था। बोली—

"क्या वह संग आये हैं ?"

"कौन ? राजी !···नहीं वह नहीं आया।"

"तो क्या कुमुद अकेली आई है ?"

"वह अब क्या आयेगी···माधुरी···!" वह एकाएक गम्भीर हो गया।

'क्यूँ···? क्या···?" अनायास माधुरी ने पूछा और अपने पति के मुख को देखने लगी। उसकी आँखों में आँसू देखकर माधुरी ने अपना प्रश्न फिर दोहराया।

"माधुरी ! कुमुद तो भगवान को प्यारी हो गई।" वासुदेव का गला भर आया और उसने मुँह मोड़ लिया।

"क्या हुआ था उसे··· ?"

उसी समय पर्दा हटाकर गंगा एक स्त्री को साथ लिये भीतर आई, जिसकी गोद में एक नन्हा सा बालक था—उसके प्रश्न का उत्तर।

स्त्री वेश-भूषा से दासी प्रतीत हो रही थी।

"यह है राजी का बेटा···जो इस संसार में आते ही अपनी माँ को खो बैठा।" वासुदेव ने कहा। माधुरी की समझ में सब आ गया। वासुदेव ने फिर कहा—

"मेरे जाने से पूर्व ही वह इस लोक से जा चुकी थी। और दो दिन

का यह बालक राजेन्द्र के लिये प्रश्न बनकर रह गया।"

"वह स्वयं नहीं आये क्या ?"

"नहीं···इसे ही भेजा है—तुम्हारे लिये। कह रहा था, माधुरी को छोड़ कोई भी तो अपना नहीं जो इसे अपने बच्चे के समान पाल सके··· ।"

माधुरी की आँखों में रुके हुए आँसू बरस पड़े। वह धीरे-धीरे उस दासी की ओर बढ़ी जिसकी गोद में बच्चा हाथ-पाँव चला रहा था। बच्चा बड़ा ही प्यारा था। कुछ क्षण वह एकटक उसे देखती रही और फिर उसे अपनी बाँहों में लेकर वक्ष से चिपका लिया।

भावना का बाँध टूट पड़ा। ममत्व जागृत हो उठा। बुझे दीप फिर जल उठे। अँधेरे मन में फिर उजाला भर गया जैसे काली घटा में सूर्य की किरण फूट पड़ी हो।

उसे अनुभव हुआ कि उसके जीवन के सब से बड़े अभाव की पूर्ति हो गई हो। बालक को वक्ष से लगाये वह खो गई। उसे सुध तब आई, जब वासुदेव ने उसे छुआ और बाँहों का सहारा देकर दूसरे कमरे में ले गया।

पति के साथ वह अन्दर जा रही थी तो उसने अनुभव किया जैसे मँझधार में घिरी नाव को पतवार मिल गया हो और उसी का सहारा लिये वह तूफानी भँवर से मुक्त हो गई हो। अँधेरे मस्तिष्क में उभरते हुए विचित्र भाव और बीते दिनों की अधूरी रेखायें धीरे-धीरे मिलती जा रही थीं और वह फिर से पाताल से उभरकर आकाश को छूने लगी।

खुशियाँ झूम उठीं। अधूरे स्वप्न साकार हो गये और वह स्वतन्त्र पंछी की भाँति अनन्त आकाश में विचरने लगी। उसी क्षण एक आवाज ने, जो उसके जीवन के पुराने वातावरण के लिये नई और अनोखी थी, उसे सजग कर दिया जैसे किसी ने झँझोड़कर उसे सचेत कर दिया हो। वह स्वप्नों के संसार से निकल वास्तविकता को देखने लगी।

राजेन्द्र का बेटा, उसका अपना पुत्र रो रहा था। उसकी रोने की आवाज़ और चीखें उसके कानों में यूँ उतरीं जैसे जीवन की सुरीली और मधुर तान। उसने उसे अपने वक्ष में और भी कसकर समेट लिया जैसे उसने अपनी खोई जीवन-निधि को फिर पा लिया हो और वह किसी नई मंजिल की ओर अपने पग बढ़ा रही हो।